कुरुक्षेत्र

मई 1998

स्वर्ग से भी सुन्दर गांव

रमेश मनोहरा

गांव का कन्हैया
रोजगार की तलाश में
जब शहर में आया।
महीने भर के भीतर ही
शहर के दूषित पर्यावरण
को देखकर घबराया।

अत: शहर की जिंदगी
उसे रास नहीं आई
गांव की गलियां ही
उसे वापस खींच लाई।

तब गांव के कालूराम ने
कन्हैया से प्रश्न पूछते हुए कहा
कन्हैया, हमें एक बात समझाओ।
शहर से इतनी जल्दी
वापस क्यों आ गए, बताओ?
जबकि यह कहकर गए थे
शहर में खूब कमाऊंगा
कमाकर गांव का नाम रोशन करूंगा।
इतनी जल्दी ही शहर से
क्यों मोह छूट गया?
जो सपना संजोकर गए थे
वह क्यों टूट गया?

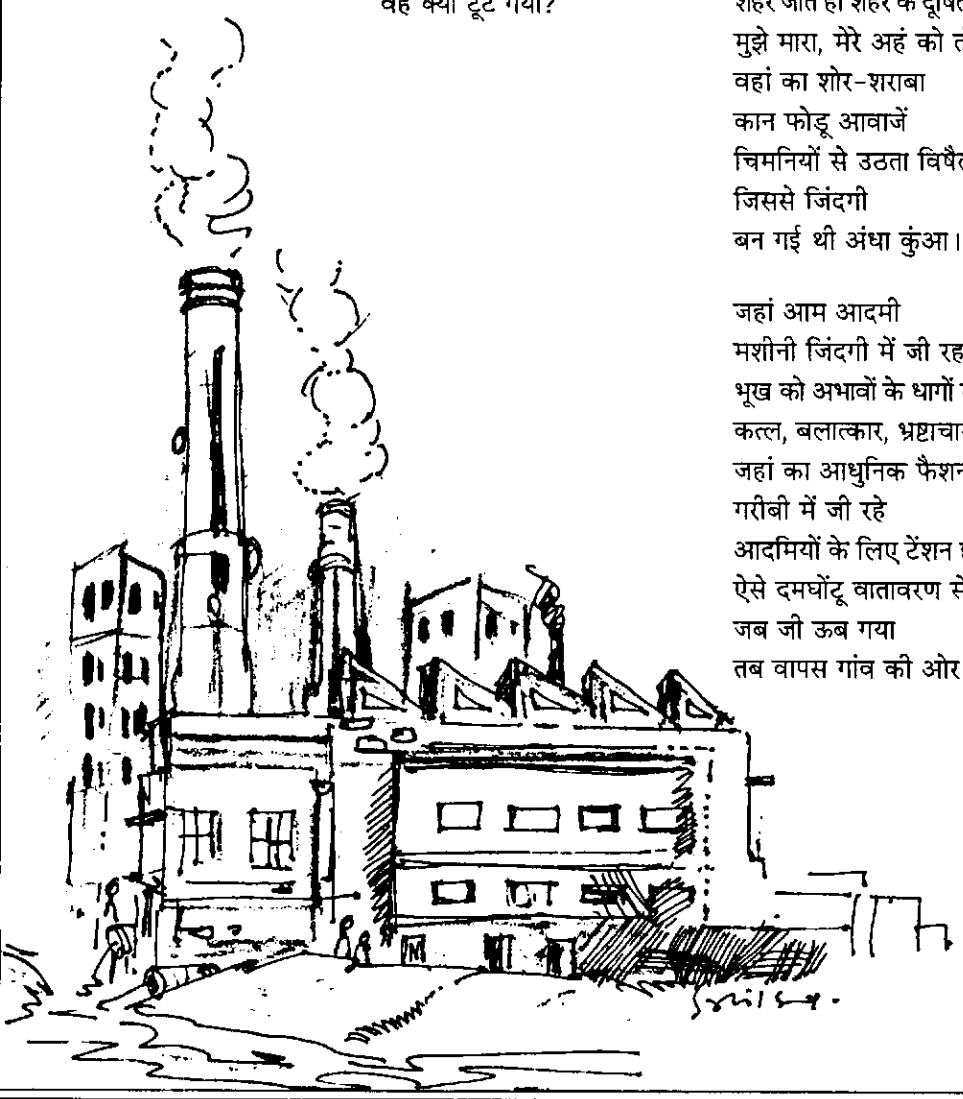

कन्हैया पहले तो सकुचाया
फिर हिम्मत को जुटाया
और कालूराम से बोला
सचमुच, जो सपना संजोया था
संजोकर शहर गया था
वह बनने के पहले ही टूट गया
शहर जाते ही शहर के दूषित पर्यावरण ने
मुझे मारा, मेरे अहं को तोड़ा-मरोड़ा
वहां का शोर-शराबा
कान फोड़ू आवाजें
चिमनियों से उठता विषैला धुआं
जिससे जिंदगी
बन गई थी अंधा कुंआ।

जहां आम आदमी
मशीनी जिंदगी में जी रहा है
भूख को अभावों के धागों से सी रहा है
कत्ल, बलात्कार, भ्रष्टाचार, व्यभिचार
जहां का आधुनिक फैशन है
गरीबी में जी रहे
आदमियों के लिए टेंशन ही टेंशन है।
ऐसे दमघोंटू वातावरण से
जब जी ऊब गया
तब वापस गांव की ओर मुड़ गया।

इस बात से जब कालूराम को संतोष न हुआ
तब फिर अगला प्रश्न पूछते हुए कहा
जिस गांव को तुम
नफरत की निगाह से देखते थे
अब कैसे इससे समझौता करोगे
यहां कैसे रह पाओगे।

तब कन्हैया ने कालूराम को समझाया
इस कहावत का अर्थ बताया
कि 'दूर के ढोल सुहाने होते हैं'
इस कहावत को
सच मानकर उलझा
शहर की चकाचौंध को ही
जीवन का अंतिम सत्य समझा
परंतु शहर का जब
नारकीय जीवन भोगा
तो अपने आप से पाया धोखा।

(शेष आवरण पृष्ठ 3 पर)

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय
प्रमुख मासिक पत्रिका

वर्ष 43 | अंक 7 | वैशाख-ज्येष्ठ 1920 | मई 1998

कार्यकारी संपादक
बलदेव सिंह मदान

उप संपादक
रजनी

संपादकीय पता
संपादक, 'कुरुक्षेत्र', ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय,
कृषि भवन, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 3015014
फैक्स : 011-3015014
तार : ग्राम विकास

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
डी.एन. गांधी

विज्ञापन प्रबंधक
के.एस. जगन्नाथ राव

आवरण सज्जा
एम.एम. मलिक
सलिल शैल (मुख पृष्ठ और चित्र)

'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने और अंक न मिलने की शिकायत, विज्ञापन और प्रसार संख्या प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक-4, लेवल-7, आर.के. पुरम, नई दिल्ली-110 066 से करें। विज्ञापनों के लिए विज्ञापन प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक-4, लेवल-7, आर.के. पुरम, नई दिल्ली-110 066 से संपर्क करें। फोन : 6105590

मूल्य एक प्रति : पांच रुपये
वार्षिक शुल्क : 50 रुपये
द्विवार्षिक : 95 रुपये
त्रिवार्षिक : 135 रुपये

हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी में भी प्रकाशित इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो।

इस अंक में

- **विकास योजनाओं में मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के प्रयास : लक्ष्य और उपलब्धियां** — डा. उमेश चन्द्र अग्रवाल — 3
- **ग्रामीण विकास में जन-संचार माध्यमों का योगदान** — पारुल जैन — 9
- **ग्रामीण समस्याओं के सार्थक समाधान की ओर** — डा. दिनेश मणि — 11
- **ग्रामीण महिलाओं में साक्षरता अभियान : अनुभवात्मक पहलू** — डा. विमला उपाध्याय — 12
- **सच होते सपने (कहानी)** — डा. शीतांशु भारद्वाज — 15
- **भारत में बढ़ती बेरोजगारी : कारण, समस्याएं और समाधान** — डा. गणेश कुमार पाठक — 18
- **ग्रामीण विकास में संचार माध्यमों की भूमिका** — ममता भारती — 23
- **ग्रामीण विकास में कृषि आधारित उद्योगों की सम्भावनाएं** — डा. एस.सी. जैन — 25
- **ग्रामीण उद्योगों में रोजगार** — डा. नर्रासंह बिन्नाणी — 27
- **ग्रामोद्योग की परिभाषा (स्थायी स्तंभ)** — आर. श्रीनिवासन — 29
- **बायोगैस के प्रति बढ़ रहा उत्साह : विकास का प्रतीक** — पी.आर. त्रिवेदी — 31
- **ग्राम्य जीवन में मौसम की भविष्यवाणियां** — सुधा — 33
- **प्रौढ़ शिक्षा से संभव है महिला साक्षरता** — पंकज कौशिक — 35
- **ट्राईसेम : एक मूल्यांकन** — बी.बी. मंसूरी — 37
- **कैसे खत्म हो बेटी-बेटे का फर्क** — अंकुश्री — 38
- **खतरनाक है मानसिक तनाव** — अभयकुमार जैन — 39

पाठकों के विचार

सभी अंक संग्रहणीय होते हैं

कुरुक्षेत्र मासिक के सभी अंक संग्रहणीय होते हैं। हमें यहां, भारत के उत्तर-पूर्वी राज्य के इस भाग में सभी अंक प्राय: देर से प्राप्त होते हैं। दिसम्बर अंक में बंकर राय का लेख *आधुनिक टेक्नोलाजी गांवों की समस्या का समाधान नहीं* पढ़कर लगा कि वास्तव में लेखक बहुत सूक्ष्म विचारक, अनुभवी और सही अर्थों में वर्तमान परिस्थितियों, आधुनिक टेक्नोलाजी और शिक्षा प्रणाली का मर्मज्ञ और विशेषज्ञ है।

इसी तरह सितम्बर 1997 में प्रकाशित इद्रमणि साहु का लेख *आजादी के 50 वर्ष बाद भी, आखिर क्यों और कब तक* वास्तव में समय की मांग तथा वास्तविकता है। कृपया अगले अंकों में प्राकृतिक संसाधनों और पर्यावरण पर भी लेख प्रकाशित करें।

सुशील कुमार, पी.जी.टी. भूगोल, जवाहर नवोदय विद्यालय, फुटुंग, सिक्किम

गांधी दर्शन कभी अप्रासंगिक नहीं होगा

कुरुक्षेत्र का जनवरी 1998 का अंक पढ़ा। *गांधी विचार संगति: अनंत और व्यापक* (डा. के.डी. गंगराडे) के अन्तर्गत गांधी दर्शन की उत्कृष्ट व्याख्या की गई है। गांधी दर्शन राष्ट्र, जाति, समाज और समूचे विश्व को इतनी व्यावहारिकता के साथ परिभाषित और सुस्पष्ट करता है कि उसके किसी भी काल में अप्रासंगिक होने का प्रश्न ही नहीं उठता।

गांधी जी ने कहा था कि भारत मेरे लिए दुनिया का सबसे प्यारा देश है, इसलिए नहीं कि वह मेरी मातृभूमि है बल्कि इसलिए कि मैंने सबसे ज्यादा अच्छाई इसी में पाई है। जाहिर है विचारों की इतनी निष्पक्षता और सुस्पष्टता कहीं और मिल ही नहीं सकती।

पंकज के. सिंह, सिंह सदन, राजा बाग, सातवीं गली, मैनपुरी, (उ.प्र.)

बाल भिक्षु प्रथा पर लेख ने दिल को झकझोर दिया

मुझे *कुरुक्षेत्र* का फरवरी अंक उपलब्ध हुआ और पत्रिका के माध्यम से हमें ग्रामीण जीवन के विविध पहलुओं पर उत्कृष्ट कोटि की जानकारियां प्राप्त हुईं। डा. रोहिणी प्रसाद का *बाल भिक्षु प्रथा* लेख निश्चित रूप से दिल को झकझोरने वाला सत्य है। बाल भिक्षावृत्ति न सिर्फ बालकों के लिए, बल्कि सम्पूर्ण समाज के लिए अभिशाप है। सीताराम का लेख *आर्थिक समृद्धि के लिए मोती-पालन* निश्चय ही बेरोजगारी के दलदल में फंसी युवा पीढ़ी के लिए एक सकारात्मक कदम होगा। ग्रामीण विकास आज हमारे राष्ट्र की सर्वाधिक महत्वपूर्ण आवश्यकता है, इसके लिए हमारे ग्राम जो अपेक्षा रखते हैं और जिस संवेदनशीलता की आवश्यकता महसूस करते हैं, वह इस पत्रिका के माध्यम से स्वावलम्बी और स्वायत्त गांव, पंचायती राज में सामुदायिक सहभागिता, ग्रामीण विकास में सड़क परिवहन, गन्ना विकास तथा ग्रामीण विकास में गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका के रूप में पूरी की गई है। महेश चन्द्र जोशी की कहानी *बेटी* तो अपने आप में एक अलग संवेदनशील, मर्मस्पर्शी तथा उत्कृष्ट कोटि की रचना है। अंक में सहकारिता के विविध रूपों का विवेचन किया गया है परन्तु सहकारी आंदोलन भारत में अपनी शताब्दी पूरी करने के बावजूद सुदृढ़ स्थिति में नहीं है। ग्रामीण जीवन की जटिलताओं को देखते हुए तथा भविष्य के भारत की तसवीर को दृष्टिगत रखते हुए सहकारिता के स्वरूप तथा क्रियान्वयन को और अधिक व्यापकता प्रदान करने की आवश्यकता है।

ओम प्रकाश शुक्ला, पर्यावरण विज्ञान संस्थान, महात्मा गांधी चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय, चित्रकूट, सतना (म.प्र.)

स्व-उत्थान के लिए ग्रामवासी खुद पहल करें

कुरुक्षेत्र का फरवरी 1998 पढ़ने का सुअवसर मिला। गांव में रहने वालों को जागरूक बनाने वाले कई लेख इस अंक में हैं। स्व-उत्थान के लिए आवश्यक है कि गांववासी स्वयं पहल करें क्योंकि सरकार तो सिर्फ मदद ही कर सकती है, भागीदारी तो हमें स्वयं करके ही चल रही सरकारी योजनाओं का लाभ उठाना होगा। इस अंक में छपे *स्वावलंबी गांव, पंचायती राज में सहभागिता तथा सहकारी शिक्षा प्रसार* के लेख विशेष रूप से अच्छे लगे। पत्रिका में निखार आया है। *कुरुक्षेत्र* पत्रिका से पाठकीय तथा लेखकीय जुड़ाव बीस वर्ष पुराना है। दो सुझाव हैं—एक तो ग्रामीण पाठकों को पत्रिका से सीधे जोड़ने से प्रयास अधिकाधिक किए जाएं ताकि गांवों की जो तसवीर बदल रही है, उसका असली पहलू भी उभर कर सामने आए और दूसरा, सभी रचनाकारों को पत्रिका बराबर मिले, भले ही वार्षिक चंदा पारिश्रमिक से समायोजित करने की सहमति उनसे प्राप्त कर लें। अच्छा रहेगा।

हरि विश्नोई, 77 गांधी नगर, बरेली (उ.प्र.)

भावी खतरे का संकेत

कुरुक्षेत्र फरवरी 1998 अंक में *स्वावलंबी और स्वायत्त गांव* लेख के द्वारा ग्रामीण परंपरा की विस्मृति से आसन्न खतरों की ओर संकेत किया गया है, जो हमें आत्म-विवेचना को विवश करते हैं। ग्रामीण व्यवस्था जिस पर भारत का सर्वांगीण पहलू निर्भर करता है, अगर टूट गई तो भारत भी पाश्चात्य देशों की तरह उपभोक्तावाद के चंगुल में जकड़ा हुआ एक बाजार मात्र रह जाएगा।

थकान, जिसे हम मानव जीवन की एक सामान्य प्रक्रिया मानकर नजरअंदाज कर देते हैं, उसके कारणों से संबंधित तथ्य चौंकाने वाले लगे। पंचायती राज में सामुदायिक सहभागिता बढ़ाने के उपायों की जानकारी काफी उपयोगी लगी। यह अंक पढ़ने से लगा कि जन-चेतना के अभाव में ग्राम-पंचायतें अन्य सरकारी कार्यालयों की तरह ही अराजकता की अंधी गली का पथिक बन चुकी हैं। *ग्रामीण विकास में गैर-सरकारी संगठनों की भूमिका* लेख वास्तव में प्रशंसनीय है। आम जनता में श्रम की प्रतिष्ठा तथा सामुदायिक सहभागिता की भावना को गैर-सरकारी संगठन ही प्रसारित कर सकते हैं।

मुकेश कुमार 'बालयोगी', ग्राम-तराजीवर, मुजफ्फरपुर (बिहार)

विकास योजनाओं में मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के प्रयास: लक्ष्य और उपलब्धियां

डा. उमेश चन्द्र अग्रवाल*

स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद देश की पिछड़ी अर्थ-व्यवस्था को सुधारने और देश में विकास की प्रक्रिया को तेज करने जैसे मुख्य उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु वर्ष 1951 से पंचवर्षीय योजनाओं का निर्माण और उनका क्रियान्वयन प्रारम्भ किया गया और इन योजनाओं पर सरकार द्वारा वृहद धनराशि खर्च की गई। इन योजनाओं के माध्यम से उद्योग तथा कृषि के क्षेत्र में तीव्र वृद्धि की दर प्राप्त करने, गरीबी और बेरोजगारी दूर करने, क्षेत्रीय असमानताओं को कम करने, अमीरी और गरीबी के बीच की खाई को पाटने जैसे प्रयास किए गए। चौथी पंचवर्षीय योजना (1969-74) तक हमारी आर्थिक विकास की नीति 'ट्रिकल डाउन' सिद्धान्त पर आधारित थी जिसका आशय है कि यदि विकास की दर तेज रखी जाए तो आज नहीं तो कल, इसका लाभ गरीबों तक रिस-रिस कर स्वत: पहुंच जाएगा और गरीबी दूर हो सकेगी। लेकिन यह धारणा निर्मूल साबित हुई क्योंकि विकास 'ट्रकिल डाउन' के बजाए 'ट्रकिल अप' हुआ और इसका परिणाम हुआ कि गरीब और अधिक गरीब हुए तथा अमीर और अधिक अमीर।

इस तथ्य को स्वीकारते हुए पांचवी पंचवर्षीय योजना (1974-79) में ट्रिकल डाउन' सिद्धान्त को नकारते हुए और 'बाटम-अप' की ओर प्रयास करने के लिए गरीबी और बेरोजगारी पर प्रहार करने वाली 'ग्रामीण विकास योजनाएं' प्रारम्भ की गईं। उदाहरण के तौर पर रेगिस्तान के अभावग्रस्त तथा समस्यामूलक क्षेत्र में विकास की गति को तेज करने के लिए 1977 में 'मरुभूमि विकास कार्यक्रम' चलाया गया। गरीबों को रोजगार देने हेतु 'काम के बदले अनाज कार्यक्रम' भी वर्ष 1977 में प्रारम्भ किया गया। इसी प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों के विकास पर अधिक बल देने और वहां गरीबी और बेरोजगारी पर समग्र रूप से प्रहार करने हेतु 'समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम' (आई.आर.डी.पी.) और 'अंत्योदय कार्यक्रम' तथा ग्रामीण युवाओं को स्वरोजगार हेतु प्रेरित तथा प्रशिक्षित करने के लिए 'ग्रामीण युवा स्वरोजगार प्रशिक्षण कार्यक्रम' (ट्राइसेम) आदि कार्यक्रम वर्ष 1979 में प्रारम्भ किए गए। इस प्रकार की योजनाओं और कार्यक्रमों से देश में बेरोजगारी और गरीबी को कम करने का प्रयास किया गया। भले ही इन योजनाओं से पूर्व-निर्धारित और अपेक्षित उद्देश्यों की पूर्ति नहीं हो सकी है लेकिन निश्चित रूप से देश के प्रत्येक भाग में और अधिकांश लोगों पर उनका काफी अच्छा प्रभाव पड़ा।

इनके अतिरिक्त 'बाटम अप' के सिद्धान्त पर ही आधारित सभी देशवासियों, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में पिछड़े और गरीब लोगों, को जीवन की कुछ मूलभूत आवश्यकताएं उपलब्ध कराने के लिए पांचवीं योजना में ही पहली बार एक रणनीति बनाई गई जिसे 'न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम' का नाम दिया गया। इस कार्यक्रम के अंतर्गत पांचवीं योजना में नौ मूलभूत आवश्यकताओं की पहचान की गई जिन्हें चरणबद्ध तरीके से सभी देशवासियों को यथाशीघ्र उपलब्ध कराने का निर्णय किया गया। इनमें प्राथमिक शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा, ग्रामीण विद्युतीकरण, ग्रामीण आवास, ग्रामीण पेयजल व्यवस्था, ग्रामीण सड़कें, ग्रामीण स्वास्थ्य, शहरी मलिन बस्तियों का सुधार तथा पौषाहार कार्यक्रम सम्मिलित थे। बाद में अनुभव की गई आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए इनमें और चार सुविधाओं को जोड़ा गया—ग्रामीण ऊर्जा, ग्रामीण ऊर्जा हेतु वनीकरण, ग्रामीण स्वच्छता तथा सार्वजनिक वितरण प्रणाली। इन सभी सुविधाओं को देश के सभी गरीब लोगों को उपलब्ध कराने के लिए केन्द्र सरकार द्वारा मानक निर्धारित किए गए और निर्धारित समय में इन सुविधाओं की सभी को उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए समय-सीमा और आवश्यक धनराशि की व्यवस्था सुनिश्चित करने के लिए सभी राज्यों से अपेक्षा की गई। इन सभी सुविधाओं की पूर्ति हेतु योजना आयोग द्वारा सभी राज्यों के लिए आवश्यक धनराशि निर्धारित करते हुए यह व्यवस्था सुनिश्चित की गई कि इन सुविधाओं की पूर्ति हेतु निर्धारित धनराशि को किसी अन्य मद या अन्य कार्यों के इस्तेमाल में नहीं लाया जा सके।

गरीबी की रेखा के नीचे रहने वाले लोग

इन सभी आवश्यक सुविधाओं को ग्रामीण क्षेत्रों में उपलब्ध कराने पर विशेष बल दिया गया क्योंकि ग्रामीण क्षेत्रों में देश की लगभग तीन-चौथाई जनसंख्या निवास करती है और उसका अधिकांश भाग तुलनात्मक दृष्टि से आवश्यक सुविधाओं से वंचित रहा है। गरीबों की संख्या अधिक होने के कारण वहां के लोग इन अत्यावश्यक सुविधाओं को अपने प्रयासों

*संयुक्त निदेशक, प्रशिक्षण प्रभाग, राज्य नियोजन संस्थान, उत्तर प्रदेश, कालाकांकर भवन, लखनऊ-226007

मे जुटाने में पूरी तरह असमर्थ रहे हैं। अत: देश में उपलब्ध मानव संसाधनों का समग्र विकास करने की दिशा में इसे एक महत्वपूर्ण कदम मानते हुए सरकार द्वारा इस ओर विशेष ध्यान दिया गया, लेकिन पांचवीं, छठी, सातवीं और आठवीं योजना के पूर्ण हो जाने के उपरान्त और करोड़ों रुपये खर्च करने के बाद भी अभी तक सभी देशवासियों को ये मूलभूत आवश्यकताएं उपलब्ध नहीं कराई जा सकी हैं।

गरीबी और बेरोजगारी के संदर्भ में विकास की लम्बी यात्रा के बाद भी कोई बहुत ज्यादा प्रगति नजर नहीं आती। देश में गरीबों के प्रतिशत में वर्ष 1951-52 की तुलना में अब तक कुछ कमी जरूर आई है। वर्ष 1951-52 में गरीबों का कुल जनसंख्या में 52.66 प्रतिशत के स्थान पर 1991-92 में 37.84 प्रतिशत हो जाने से 14.82 प्रतिशत की कमी अवश्य दिखाई देती है लेकिन देश में गरीबों की कुल संख्या में साल-दर-साल अत्यधिक बढ़ोतरी हुई है। तालिका-1 से स्पष्ट होता है 1951-52 में जहां देश में गरीबों की संख्या 19.87 करोड़ थी, वह 1991-92 में बढ़ते-बढ़ते 32.28 करोड़ हो गई है अर्थात इस अवधि में पहले की संख्या में 12.41 करोड़ गरीब और जुड़ गए। इस सम्बन्ध में 'ज्यों-ज्यों दवा की, मर्ज त्यों-त्यों बढ़ता चला गया' पंक्तियां बिल्कुल सही बैठती हैं। नौवीं योजना (1997-2002) में निर्धनता-अनुपात में 18 प्रतिशत की कमी का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

तालिका-1
गरीबी की रेखा के नीचे जीवन-यापन करने वालों का प्रतिशत, कुल संख्या और वृद्धि

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के दौर	अवधि	गरीबों का प्रतिशत	गरीबों की कुल संख्या (करोड़ में)	पूर्व अवधि की तुलना में वृद्धि (करोड़ में)	गरीबों की संख्या में 1951-52 के संदर्भ में वृद्धि
3-8	1951-55	52.66	19.87	—	—
9-15	1956-60	52.74	21.95	2.08	2.08
16-19	1961-65	48.02	22.16	0.21	2.29
20-24	1966 70	58.60	30.17	8.01	10.30
25-28	1971-75	53.39	30.68	0.51	10.81
32.38	1976-83	45.68	30.41	—.27	10.54
42-45	1984-90	37.20	29.00	—1.41	9.13
40-48	1991-92	37.84	32.28	3.82	12.41

गरीबी मूल रूप से बेरोजगारी का परिणाम अथवा उससे जुड़ी हुई समस्या है। अत: गरीबों की संख्या का बढ़ना इस बात का स्पष्ट द्योतक है कि देश में रोजगार के समुचित साधन उपलब्ध नहीं हैं। आजादी के पांच दशक पूरे कर लेने और आठ पंचवर्षीय योजनाओं की लम्बी छलांग लगा लेने के बाद भी देश में बेरोजगारों की संख्या कम होने के स्थान पर बढ़ती चली जा रही है। बेरोजगारी के जितने और जैसे भी स्तर हो सकते हैं, वे सभी हमारे देश में मौजूद हैं अर्थात यहां पढ़े-लिखे भी बेरोजगार हैं, शिल्पी और दक्षता-प्राप्त लोग भी बेरोजगार हैं और जो कौशल प्राप्त नहीं हैं, वे तो बेरोजगार हैं ही। विकास की विविध गतिविधियों ने यद्यपि देश में नए रोजगार पैदा किए हैं, लेकिन बढ़ती हुई आबादी ने उनका प्रभाव क्षीण कर दिया है। पहले की तुलना में यद्यपि ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में लोगों को रोजगार के अवसर पहले की तुलना में कहीं अधिक उपलब्ध हैं, लेकिन समस्या बढ़ती ही जा रही है।

वैसे तो देश में बेरोजगारी की समस्या आंकड़ों में प्रदर्शित समस्या से कहीं अधिक भयंकर है। फिर भी, यदि तालिका-2 में दिए गए आंकड़ों पर दृष्टि डालें, तो विदित होता है कि 1951 में बेरोजगारी की दर 0.21 प्रतिशत थी जो 1969 में बढ़कर 2.5 प्रतिशत हो गई। 1985 में यह बढ़कर 4.54 प्रतिशत और 1995 में 5.51 प्रतिशत के स्तर तक पहुंच गई। हालांकि सभी पंचवर्षीय योजनाओं में पूर्ण रोजगार के लक्ष्य को प्राप्त करने का निश्चय दोहराया गया और उसे प्राप्त करने के लिए प्रयास किए जाते रहे लेकिन अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं हुए। वर्तमान में बेरोजगारी की वृद्धि दर, जनसंख्या की वृद्धि दर से अधिक होने के कारण बेरोजगारी की संख्या में निकट भविष्य में कमी आने की कोई सम्भावना नहीं दिखाई देती। पिछले वर्षों में जनसंख्या की औसत वृद्धि दर 2.1 प्रतिशत रही है, जबकि बेरोजगारी की औसत वृद्धि दर 2.5 प्रतिशत रही। देश में रोजगार कार्यालयों में 3.77 करोड़ बरोजगार लोग दर्ज हैं लेकिन मोटे अनुमान के अनुसार देश में बेरोजगारों की संख्या छह करोड़ से कम नहीं है। नौवीं पंचवर्षीय योजना (1997-2002) में यद्यपि वर्ष 2002 तक सम्पूर्ण रोजगार प्राप्त करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है लेकिन यह कैसे प्राप्त हो पायेगा, समझ से परे की बात लग रही है। पंजाब, हरियाणा, दिल्ली चैम्बर आफ कामर्स द्वारा तो सन् 2002 तक देश में बेरोजगारों की संख्या 9 करोड़ 40 लाख तक पहुंच जाने का अनुमान लगाया गया है। इससे स्पष्ट है कि बेरोजगारी की समस्या का हल निकट नहीं है। इस दिशा में एक सुस्पष्ट नीति तथा अधिक ईमानदारी भरे प्रयासों की आवश्यकता है।

तालिका-2
भारत में रोजगार और बेरोजगारी

वर्ष	रोजगार (करोड़ में)	बेरोजगार (करोड़ में)	बेरोजगारी की दर (प्रतिशत में)
1951	16.17	0.03	0.21
1956	16.49	0.23	1.35
1961	17.20	0.65	3.63
1965	20.30	0.52	2.50
1974	22.40	1.01	4.32
1980	24.48	1.15	4.52
1985	26.67	1.27	4.54
1992	30.17	1.70	5.33
1995	32.05	1.87	5.51

शिक्षा

इसी प्रकार हमारी शिक्षा की व्यवस्था, उपलब्धता और साक्षरता की प्रगति भी निराशाजनक ही रही है। हमारे संविधान से लेकर हमारी विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में शत-प्रतिशत साक्षरता के लक्ष्य को प्राप्त करने के

निश्चय को दोहराया जाता रहा है। संविधान की धारा 45 में 14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों को नि:शुल्क तथा अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा 1960 तक उपलब्ध कराने का प्रावधान किया गया था लेकिन आजादी के 50 वर्षों के बाद भी इस वायदे को पूरा नहीं किया जा सका है। इसी प्रकार आठवीं योजना (1992-1997) में तथा गत वर्ष मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन में सन् 2000 तक सभी को प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराने तक शिक्षा पर सकल घरेलू उत्पाद का 6 प्रतिशत व्यय करने का संकल्प किया गया, लेकिन शिक्षा पर किये जा रहे बजट का आबंटन तालिका-3 से देखते हुए ऐसा लगता है कि सरकार की शिक्षा के प्रति अपना वायदा पूरा करने में कोई खास रुचि नहीं है। अब नौवीं योजना (1997-2002) में सन् 2000 के स्थान पर संपूर्ण साक्षरता के लक्ष्य को सन् 2005 तक प्राप्त करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।

तालिका-3
विभिन्न योजनाओं में शिक्षा पर व्यय

योजना अवधि	शिक्षा पर कुल व्यय (करोड़ रु.)	सकल घरेलू उत्पाद का प्रतिशत	प्राथमिक शिक्षा पर व्यय (करोड़ रु.)	शिक्षा पर कुल व्यय का प्रतिशत
प्रथम (1951-56)	15.3	7.8	8.5	56
दूसरी (1956-61)	27.3	5.8	9.5	35
तीसरी (1961-66)	58.9	6.8	20.1	34
चौथी (1969-74)	78.6	5.0	23.9	30
पांचवीं (1974-79)	91.2	3.2	31.7	35
छठी (1980-85)	253.0	2.5	83.6	33
सातवीं (1985-90)	763.3	3.5	284.9	37
आठवीं (1992-97)	1960.0	3.7	920.1	47

यद्यपि इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि देश में आजादी के बाद से स्कूलों की संख्या बहुत तेजी से बढ़ी है। बच्चों और शिक्षकों की संख्या में भी काफी बढ़ोतरी हुई है। शिक्षा पर किए जा रहे खर्च में भी बढ़ोतरी की गई है। इस प्रकार आजादी के बाद शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण विस्तार हुआ है। देश में प्राथमिक विद्यालयों की संख्या जो 1950-51 में केवल 2,23,000 थी, बढ़कर 10 लाख से भी अधिक हो गई है। इसी प्रकार इन विद्यालयों में विद्यार्थियों की संख्या 1950-51 में 2.4 करोड़ से बढ़कर अब 15 करोड़ से भी अधिक हो गई है। 1991 की जनगणना के अनुसार देश में साक्षरता दर 52.11 प्रतिशत तक पहुंची है, जबकि 1947 में मात्र 20 प्रतिशत थी।

यह तो रहा शैक्षिक विकास का एक पक्ष, लेकिन यदि दूसरे पक्ष पर ध्यान दें तो पता लगता है कि इतने सारे प्रयासों और खर्चों के बाद भी हम निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने में असफल रहे हैं। जैसा कि तालिका-4 से स्पष्ट है कि पिछले वर्षों में साक्षरता दर में तो निरन्तर वृद्धि हुई है लेकिन देश में निरक्षरों की संख्या में भी लगातार वृद्धि हुई है। वर्ष 1951 में जहां निरक्षर मात्र 30 करोड़ थे, वह 1991 में बढ़कर 40 करोड़ से भी अधिक हो गये। इसी प्रकार स्कूलों की संख्या बढ़ी अवश्य है, लेकिन पढ़ाई का स्तर गिरा है। अभी भी 8 प्रतिशत स्कूल खुले आकाश के नीचे चल रहे हैं और 38.5 प्रतिशत स्कूलों में ब्लैक-बोर्ड तथा अन्य आवश्यक उपकरण नहीं हैं। आधे से अधिक स्कूलों में स्वच्छ पेयजल की समुचित व्यवस्था नहीं है। 38.9 प्रतिशत स्कूलों में अभी भी एक ही अध्यापक है। इसका परिणाम यह हुआ है कि विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले बहुत-से बच्चे अपनी प्राथमिक स्तर की शिक्षा भी पूरी नहीं कर पाते। पांचवीं कक्षा तक पहुंचते-पहुंचते लगभग 36 प्रतिशत तथा सातवीं कक्षा तक पहुंचते-पहुंचते 53 प्रतिशत बच्चे पढ़ाई छोड़ देते हैं। पिछड़े राज्यों में यह स्थिति और ज्यादा खराब है।

तालिका-4
भारत में साक्षरता, साक्षर एवं निरक्षरों की संख्या

वर्ष	कुल जनसंख्या (करोड़ में)	पुरुष साक्षरता (प्रतिशत में)	महिला साक्षरता (प्रतिशत में)	कुल साक्षरता (प्रतिशत में)	साक्षरों की कुल संख्या (करोड़ में)	निरक्षरों की कुल संख्या (करोड़ में)
1901	23.5	9.8	0.6	5.35	1.2	22.3
1911	25.2	10.5	1.0	5.92	1.5	24.3
1921	25.1	12.2	1.81	7.16	1.7	23.3
1931	27.8	15.6	2.9	9.50	2.6	25.2
1941	31.8	24.9	7.3	16.10	5.1	26.7
1951	36.1	24.9	7.9	18.33	6.6	30.1
1961	43.9	34.4	12.9	28.31	12.4	31.5
1971	54.8	39.4	16.7	34.45	18.9	35.9
1981	68.3	46.8	24.8	43.56	29.8	38.5
1991	84.6	63.8	39.4	52.21	44.2	40.4

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि आजादी के बाद पिछले पचास वर्षों में प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में हमें कोई खास सफलता नहीं मिली है, लेकिन शिक्षा जैसी मूलभूत आवश्यकता से वंचित लोगों को अब और अधिक समय तक हम शिक्षा से वंचित नहीं रख सकते। अत: अब अधिक प्रभावी रूप से तथा सच्चे मन से इस दिशा में कारगर कदम उठाने की आवश्यकता है, तभी हम अपने संविधान में किए गए वायदे को निभाने योग्य होंगे और शिक्षित देशों की सूची में अपना नाम भी दर्ज करा सकने में समर्थ हो सकेंगे।

मूलभूत आवश्यक सुविधाएं

शिक्षा की स्थिति के बाद यदि देशवासियों को उपलब्ध आवासीय सुविधाओं का आकलन करें तो पता चलता है कि 1991 की जनगणना के अनुसार देश में कुल आवासीय इकाइयों की संख्या 15.05 करोड़ थी। इनमें से ग्रामीण क्षेत्रों में 10.79 करोड़ तथा शहरी क्षेत्रों में 4.26 करोड़ आवास उपलब्ध थे। इनके अतिरिक्त उस समय भी 2.06 करोड़ आवासों की कमी ग्रामीण क्षेत्रों में तथा 94 लाख आवासों की कमी शहरी क्षेत्रों में आंकी गई थी। इस प्रकार 1991 में देश में 3.1 करोड़ आवासों की कमी थी। तीव्र जनसंख्या वृद्धि के कारण देश में प्रतिवर्ष 20 लाख आवासों की आवश्यकता बढ़ जाती है। सभी को आवास उपलब्ध कराने के लिए इस शताब्दी के अन्त तक देश में 4 करोड़ से भी अधिक आवासीय इकाइयों की आवश्यकता होगी। वर्तमान में ग्रामीण क्षेत्र के 21 प्रतिशत और शहरी क्षेत्र के लगभग 10 प्रतिशत परिवारों को समुचित आवास उपलब्ध नहीं

हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में उपलब्ध आवासों में आवश्यक सुविधाओं की बहुत कमी है। इससे भी स्पष्ट है कि इस हेतु पिछले वर्षों में अनेक योजनाओं और कार्यक्रमों को चलाने के बाद भी हम इस क्षेत्र में कोई खास सफलता अर्जित नहीं कर सके हैं और मकान जैसी मूलभूत सुविधा भी अभी हम देश के सभी नागरिकों को उपलब्ध नहीं करा सके हैं। अत: अब नए सिरे से इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता है।

स्वास्थ्य सुविधाएं

देशवासियों को उपलब्ध स्वास्थ्य संबंधी सुविधाओं पर यदि दृष्टि डालें, तो विदित होता है कि वर्ष 1978 के 'अल्माआटा घोषणा' के हस्ताक्षरकर्ता देश होने के कारण भारत में सन् 2000 तक 'सबके लिए स्वास्थ्य' सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से प्रयास किए जा रहे हैं। इसके अतिरिक्त अनेक वैज्ञानिक आविष्कारों और आधुनिक तकनीकों के प्रसार के फलस्वरूप चिकित्सा और स्वास्थ्य के क्षेत्र में अनेक क्रांतिकारी परिवर्तन भी आए हैं, जिनके परिणामस्वरूप देशवासियों की औसत आयु जो 1950-51 में 41.3 वर्ष थी, जो मृत्यु दर पर नियन्त्रण के फलस्वरूप आज बढ़कर 61.2 वर्ष हो गई है। फिर भी, पिछले पांच वर्षों में विश्व स्वास्थ्य संगठन, यूनीसेफ, भारत सरकार के स्वास्थ्य मंत्रालय तथा विभिन्न स्वैच्छिक संगठनों द्वारा देश में रोगियों की संख्या के संबंध में जो आंकड़े प्रस्तुत किए गए हैं, वह देश में स्वास्थ्य सेवाओं की बदतर स्थिति की ओर संकेत करते हैं। इनके अनुसार देश में प्रतिवर्ष 21 लाख व्यक्ति मलेरिया से, 2.5 करोड़ व्यक्ति फाइलेरिया से, 4 करोड़ दस्त से, 13 लाख न्यूमोनिया से, 76 लाख हैजे से, 5 लाख पोलियो से, 6 लाख टिटनेस से, 60 लाख खसरे से तथा 3 करोड़ व्यक्ति दुर्घटनाओं के शिकार होते हैं। इसके अतिरिक्त देश में 8 करोड़ शारीरिक तथा मानसिक रूप से विकलांग, 90 लाख मधुमेह, 79 लाख कैंसर, 85 लाख हृदय रोग, 23 लाख अल्सर, 14 लाख गठिया ग्रस्त रोगी हैं। साथ ही, 95 लाख टी.बी. से, 61 लाख महिलाएं प्रदर रोग से तथा 40 लाख कुष्ठ रोग से पीड़ित हैं। इनके अतिरिक्त करोड़ों लोग खून की कमी, कुपोषण, नशे की लत तथा एड्स आदि से ग्रस्त हैं। पिछले वर्षों में देश में हुई चिकित्सा सेवाओं और सुविधाओं में काफी वृद्धि के फलस्वरूप भी हम इन सभी के लिए पर्याप्त चिकित्सा सुविधाएं मुहैया कराने में सफल नहीं हो पाये हैं।

देश में उपलब्ध सेवाओं तथा सुविधाओं के संबंध में यदि पहली पंचवर्षीय योजना (1951-56) की स्थिति का अवलोकन करें, तो पता चलता है कि उस समय प्रति एक हजार जनसंख्या पर मात्र 0.24 रोगी बिस्तर उपलब्ध थे, जो अब बढ़कर 1.13 हो गये हैं। तालिका-6 में दिए गए विवरण से स्पष्ट है कि देश में चिकित्सकों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हुई है। वर्ष 1951 में देश में पंजीकृत चिकित्सकों की कुल संख्या केवल 62,000 थी जो 1991 में छह गुना बढ़कर 3,94,000 हो गई है। उस समय देश में केवल 17 मेडिकल कालेज थे, जहां से प्रतिवर्ष 1,400 डाक्टर निकलते थे जबकि आज 140 मेडिकल संस्थानों से प्रतिवर्ष 15 हजार डाक्टर स्नातक डिग्री लेकर निकलते हैं। इसी प्रकार अस्पतालों की संख्या 2,694 से लगभग चार गुनी बढ़कर अब 11,174 हो गई है। ग्रामीण क्षेत्रों में 'प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाएं' उपलब्ध कराने के लिए इस समय 1,52,000 स्वास्थ्यकर्ता, 16,000 प्रयोगशाला सहायक, 13,000 चिकित्सक दल, 5,300 एक्सरे तकनीशियन आदि स्वास्थ्यकर्मी, 23,159 प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों, 30,000 अस्पतालों तथा 1,40,000 स्वास्थ्य उपकेन्द्रों में कार्यरत हैं। ये संख्याएं दिखने में बड़ी अवश्य हैं, लेकिन देश की 96 करोड़ जनसंख्या की तुलना में यह संख्याएं पर्याप्त नहीं कही जा सकती। इतना सब कुछ होते हुए भी एक मोटे अनुमान के अनुसार पहाड़ी, आदिवासी तथा दूर-दराज के ग्रामीण क्षेत्रों के लगभग 13.5 करोड़ लोग स्वास्थ्य सेवाओं के लाभ से अभी भी पूर्णतया वंचित हैं, जिसके कारण यहां सकल मृत्यु दर तथा शिशु मृत्यु दर दोनों बहुत अधिक है। इस प्रकार चिकित्सा और स्वास्थ्य के क्षेत्र में निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि सभी को स्वच्छ पीने का पानी, शिक्षा और रोजगार उपलब्ध कराने की एकीकृत नीति के तहत कठिन परिश्रम, दूरदर्शिता और दृढ़ निश्चय के साथ एक समग्र विकास की नीति को क्रियान्वित किया जाए, अन्यथा निर्धारित लक्ष्य दिवा-स्वप्न ही साबित होंगे।

तालिका-5
भारत में अस्पतालों और पंजीकृत चिकित्सकों की संख्या
(1951-1991)

वर्ष	कुल अस्पतालों की संख्या	प्रति एक लाख आबादी पर अस्पतालों की संख्या	पंजीकृत चिकित्सकों की संख्या (लाख में)	प्रति एक लाख आबादी पर चिकित्सकों की संख्या
1951	2694	7	0.62	17
1961	3054	7	0.84	21
1971	3862	7	1.51	27
1981	6804	10	2.68	39
1982	6897	10	2.71	38
1983	7189	10	2.84	39
1984	7369	10	2.96	40
1985	7474	10	3.08	41
1986	8067	10	3.20	41
1987	9803	12	3.31	42
1988	10840	13	3.55	44
1989	11079	13	3.68	46
1990	11171	13	3.81	46
1991	11174	13	3.94	47

ग्रामीण विद्युतीकरण

लगभग इसी प्रकार की स्थिति ग्रामीण विद्युतीकरण, सुरक्षित पेयजल और ग्रामीण सड़कों आदि की सुविधाओं के संबंध में भी है। ग्रामीण विद्युतीकरण के बारे में तालिका-6 से विदित होता है कि देश के ग्रामीण क्षेत्रों में बिजली की सुविधा में निरन्तर प्रगति हुई है। इस प्रगति के फलस्वरूप ही देश के 5,80,781 गांवों में से 1996 तक पांच लाख से अधिक गांवों में बिजली पहुंचाकर 86 प्रतिशत से भी अधिक गांवों को विद्युतीकृत गांवों की श्रेणी में लाया गया है। इस प्रकार आज देश के 10 गांवों में से औसतन 9 गांवों में बिजली पहुंच गई है। यहां तक कि

आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, गोवा, हरियाणा, कर्नाटक, केरल, महाराष्ट्र, पंजाब, सिक्किम, तमिलनाडु आदि राज्यों में तो शत-प्रतिशत गांव बिजली से जुड़े हैं। मगर यह संख्या इस अर्थ में भ्रामक है कि गांवों में बिजली का मात्र एक कनेक्शन मिल जाने पर ही उसे विद्युतीकृत गांव मान लिया जाता है और फिर वहां बिजली मिले या न मिले, कितने घंटे मिले, दिन में मिले या रात में, इससे कुछ सरोकार नहीं। आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-97) की मध्यावधि समीक्षा के दौरान पाया गया कि देश के केवल 42.4 प्रतिशत परिवारों को ही बिजली की सुविधा प्राप्त है। इस प्रकार अब बिजली की सुविधा उपलब्ध कराने की दिशा में गांवों की संख्या के स्थान पर परिवारों को बिजली की सुविधा उपलब्ध कराने तथा अधिक से अधिक समय तक उसकी उपलब्धता सुनिश्चित करने पर अधिक बल देने की आवश्यकता है।

तालिका-6

देश में विद्युतीकरण की स्थिति (1980-1996)

वर्ष	विद्युतीकृत गांवों की संख्या (लाख में)	विद्युतीकृत गांवों का प्रतिशत
1980	2.49	42.8
1985	3.70	63.7
1986	3.90	67.1
1987	4.14	71.2
1988	4.35	74.8
1989	4.55	78.3
1990	4.71	81.1
1991	4.81	82.8
1992	4.87	83.5
1993	4.90	84.3
1994	4.94	85.0
1995	4.97	85.5
1996	5.01	86.2

स्वच्छ पेयजल

देश के ग्रामीण और नगरीय क्षेत्रों में सभी नागरिकों को स्वच्छ पेयजल उपलब्ध कराने के लिए भी विभिन्न योजनाओं में काफी धनराशि व्यय की जाती रही है। वर्ष 1986 में 'राष्ट्रीय पेयजल मिशन' की स्थापना के बाद से इस ओर और अधिक ध्यान केन्द्रित किया गया है। सुरक्षित पेयजल की व्यवस्था तुलनात्मक दृष्टि से गांवों में अधिक जटिल है। सरकारी आंकड़ों के हिसाब से भी 31 मार्च 1996 तक की स्थिति के अनुसार 18 प्रतिशत गांवों अर्थात एक लाख से भी अधिक गांवों में स्वच्छ पेयजल उपलब्ध नहीं कराया जा सका है। नौवीं पंचवर्षीय योजना (1997-2002) में यह सुविधा उपलब्ध कराने की व्यवस्था की जा रही है, लेकिन इसमें कितनी सफलता हासिल होती है, यह तो समय ही बताएगा।

सड़क-मार्ग

इसी प्रकार सभी गांवों को सड़कों से जोड़ने के लिए भी सरकार द्वारा काफी प्रयत्न किए गए हैं। देश में आजादी के समय सड़कों की कुल लम्बाई मात्र 2,74,000 किलोमीटर थी। इनमें से 1,70,000 किलोमीटर सड़कें ग्रामीण इलाकों में थीं जो ज्यादातर कच्ची थीं। आज देश में सड़कों की कुल लम्बाई 20 लाख किलोमीटर से भी अधिक है। इनमें आधी से भी अधिक सड़कें पक्की हैं। सड़कों के क्षेत्र में इतनी प्रगति लगातार किए गए प्रयासों का ही परिणाम है। पिछली कई पंचवर्षीय योजनाओं में सड़कों के निर्माण पर निरन्तर बल दिया जा रहा है, लेकिन सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-90) में देश के ग्रामीण इलाकों को सड़कों से जोड़ने पर विशेष ध्यान केन्द्रित किया गया और वर्ष 1990 के अन्त तक 1,500 से अधिक आबादी वाले सभी गांवों और 1,000 से 1,500 आबादी वाले आधे गांवों को सड़कों से जोड़ने का लक्ष्य निर्धारित किया गया। आठवीं योजना के अन्त तक अर्थात वर्ष 1997 तक पहाड़ी, तटीय और रेगिस्तानी क्षेत्रों के भी लगभग सभी गांवों को सड़कों से जोड़ने का लक्ष्य रखा गया था, परन्तु ऐसा सम्भव नहीं हो सका।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली

इसी प्रकार 'सार्वजनिक वितरण प्रणाली' को सम्पूर्ण देश में इस आशय से लागू किया गया कि आवश्यक वस्तुओं को उचित मूल्य पर राशन की दुकानों के माध्यम से आम जनता को उपलब्ध कराया जा सके और आवश्यक वस्तुओं की चोर-बाजारी और जमाखोरी पर नियन्त्रण किया जा सके। इस प्रणाली के अंतर्गत सरकार द्वारा गेहूं, चावल, आयातित खाद्य तेल, चीनी, मिट्टी का तेल तथा कोयला जैसी आवश्यक वस्तुएं उचित मूल्य पर उपलब्ध कराने का प्रयास किया गया। इसके अतिरिक्त वर्ष 1992 से सरकार द्वारा, विशेष रूप से गरीब लाभार्थियों के लिए चुने हुए क्षेत्रों में 'संशोधित सार्वजनिक वितरण प्रणाली' प्रारम्भ की गई। इसके अन्तर्गत चाय, साबुन, दाल और आयोडीन युक्त नमक जैसी अतिरिक्त वस्तुओं को भी उपलब्ध कराया जाना है। वर्तमान में यह योजना देश के उन सभी 2,446 विकास खण्डों में लागू कर दी गई है, जहां 'सुनिश्चित रोजगार योजना' लागू है। इसके फलस्वरूप देश की 26.7 करोड़ जनसंख्या इस संशोधित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अन्तर्गत लाभान्वित हो रही है। 24 फरवरी 1997 से सरकार द्वारा 'दोहरी सार्वजनिक वितरण प्रणाली' को लागू करते हुए खाद्यान्नों के दोहरे निर्गम मूल्य घोषित कर दिए गए हैं। इसके अन्तर्गत गरीबी की रेखा के नीचे जीवन-यापन करने वाले परिवारों को 2.50 रुपये प्रति किलोग्राम गेहूं तथा 3.50 रुपये प्रति किलोग्राम चावल के रियायती मूल्य पर देने का प्रावधान किया गया है। इस नई प्रणाली से देश के लगभग 32 करोड़ लोगों के लाभान्वित होने की आशा है। यद्यपि सार्वजनिक वितरण प्रणाली के सम्बन्ध में जन-सामान्य के पूर्व अनुभव विशेष अच्छे नहीं रहे हैं, लेकिन हो सकता है कि गरीब लोगों को नई योजना के तहत लाभान्वित होने के समुचित अवसर प्राप्त हो सकें।

इस प्रकार स्पष्ट है कि देश में आजादी के बाद, पिछले पचास वर्षों में अधिकांश देशवासियों को सभी आवश्यक मूलभूत सुविधाएं उपलब्ध कराने के लिए वृहद धनराशि खर्च करते हुए काफी प्रयास किए गए हैं। ❑

MORE JOB OPPORTUNITIES IN YOUR WEEKLY JOURNAL

Employment News/Rozgar Samachar brings you more job/job improvement opportunities in the Centre/State Governments, Public Sector Undertakings, Army/Air Force/Navy/Police, UPSC, SSC, Banks, Railways and provides you up-to-date information to prepare for competitive examinations.

Half a million people in the country repose their faith in
Employment News/Rozgar Samachar
published by the **Publications Division,**
Ministry of Information & Broadcasting, Government of India.

For copies please contact your Newspaper Agent or Write to The Assistant Editor (Circulation), Employment News, R.K. Puram, East Block-IV, Level-V, New Delhi-110 066. Tel.No.6107405

Employment News/ Rozgar Samachar

ग्रामीण विकास में जन-संचार माध्यमों का योगदान

पारुल जैन

भारत गांवों का देश है। पांच लाख से ज्यादा गांव हमारी अर्थ-व्यवस्था का आधार हैं। हमारी एक-तिहाई से ज्यादा राष्ट्रीय आय खेती तथा संबद्ध गतिविधियों से प्राप्त होती है और दो-तिहाई से ज्यादा आबादी को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से रोजगार भी इन्हीं से मिलता है। संक्षेप में गांव हमारी अर्थ-व्यवस्था की धुरी हैं, हमारे देश की रीढ़ की हड्डी हैं। भारतीय संस्कृति भी इन्हीं गांवों पर आधारित है। भारत के मेले और त्योहार भी रबी और खरीफ फसलों के मौकों पर मनाए जाते हैं। गांव हमारी संस्कृति, हमारी परंपराओं के भंडार हैं। हमारे नृत्यों और संगीत में गांवों की मिट्टी की खुशबू बसी है। आजादी से पहले विदेशी शासकों ने गांवों के विकास की तरफ खास ध्यान नहीं दिया। स्वतंत्रता के बाद ग्रामीण विकास के व्यापक कार्यक्रम तैयार किए गए, बड़ी-बड़ी योजनाएं बनाई गईं। मीडिया यानी समाचार-पत्रों और जन-संचार के अन्य माध्यमों को इनके प्रचार-प्रसार का दायित्व सौंपा गया। पहली पंचवर्षीय योजना में मीडिया को लोगों में जागरूकता लाने, योजना और इसके उद्देश्य के बारे में जानकारी देने तथा लक्ष्यों और फायदों के बारे में बताने की जिम्मेदारी सौंपी गई। दूसरी पंचवर्षीय योजना में मीडिया को और सक्रिय करने का लक्ष्य रखा गया। लोगों को उनकी ही भाषा में घर-घर तक योजना का संदेश पहुंचाने के साथ-साथ इन लक्ष्यों को उनकी आवश्यकताओं और परिवेश के अनुसार ढालने का वृहद कार्यक्रम तय किया गया। तीसरी पंचवर्षीय योजना में विकास कार्यक्रम में लोगों को शामिल करने और उनका कारगर सहयोग प्राप्त करने का उद्देश्य रखा गया। लोगों को विकास के विभिन्न चरणों की जानकारी देने और योजनाओं का संदेश घर-घर तक पहुंचाने का लक्ष्य योजनाओं का अभिन्न अंग था। अब तक की आठों पंचवर्षीय योजनाओं का कमोबेश लक्ष्य था—विकास की प्रक्रिया में लोगों का सक्रिय सहयोग प्राप्त करना, उन्हें विकास प्रक्रिया का हिस्सा बनाना।

हाल के वर्षों में संचार के क्षेत्र में अभूतपूर्व प्रगति हुई है। विकास और परिवर्तन की प्रक्रिया में संचार क्रांति ने चार चांद लगा दिए हैं। उपग्रह, कंप्यूटर, टेलीविजन और वीडियो ने वह कर दिखाया है जो पहले कपोल-कल्पित या चंडू-खाने की गप्प माना जाता था। देश ही क्या, दुनिया भर के किसी भी हिस्से में हो रही गतिविधि की जानकारी आप अपने ड्राइंग रूम में लगे टी.वी. पर ले सकते हैं। टेलीफोन से आप हजारों मील दूर बैठे संबंधी से बात कर सकते हैं। पत्रों को फैक्स के जरिए भेज सकते हैं। इंटरनेट से कोई भी जानकारी पल भर में प्राप्त कर सकते हैं। इस अभूतपूर्व क्रांति के बावजूद हमारे मीडिया की स्थिति क्या रही है, आइए इस पर एक दृष्टि डालें।

समाचार-पत्र : स्वतंत्रता के बाद से देश में समाचार-पत्रों की संख्या कई गुनी बढ़ी है। देश में इस समय 33 हजार से ज्यादा अखबार छपते हैं जो 96 भाषाओं और बोलियों में प्रकाशित किए जाते हैं। इनकी 6 करोड़ 76 लाख से ज्यादा प्रतियां छपती हैं। कुछ अखबार सौ साल से भी ज्यादा पुराने हैं। देश में सबसे पुराना अखबार 'बम्बई समाचार' 1822 से प्रकाशित हो रहा है। लेकिन अखबारों की 93 प्रतिशत बिक्री एक लाख से ज्यादा आबादी वाले शहरों-कस्बों में होती है जो 10 प्रतिशत जनसंख्या की सेवा करते हैं। देश भर के पांच लाख गांवों और कस्बों की 90 प्रतिशत आबादी के लिए केवल सात प्रतिशत समाचार-पत्र ही उपलब्ध हैं।

टेलीविजन : हाल के वर्षों में टेलीविजन के प्रसार में अभूतपूर्व वृद्धि हुई है। देश की 86 प्रतिशत आबादी अब टी.वी. कार्यक्रमों का आनंद उठा सकती है। देश में इस समय 4 करोड़ 56 लाख से ज्यादा टी.वी. सेट हैं और इनमें हर साल 30 लाख की बढ़ोतरी हो रही है। देश में अधिकांश टी.वी. सेट नगरीय क्षेत्रों में हैं। लगभग 74 प्रतिशत टी.वी. उपभोक्ता शहरों में हैं। ग्रामीण इलाकों में मुश्किल से 13 प्रतिशत लोगों को ही टी.वी. की सुविधाएं उपलब्ध हैं। इनमें सरकार की योजना के अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में लगाए गए सामुदायिक टी.वी. सेट शामिल हैं जिनकी संख्या लगभग 60 हजार है। टेलीविजन कार्यक्रमों में भी 'कृषि जगत' को छोड़कर अधिकांश कार्यक्रम शहरी जनता के लिए ही तैयार किए जाते हैं। हां! मनोरंजन कार्यक्रमों के बारे में जरूर कहा जा सकता है कि इनसे गांव के लोगों का भी मनोरंजन होता है।

केबल टी.वी. और वीडियो : उपग्रह प्रसारण सुविधाओं के आने और केबल टी.वी. नेटवर्क से टी.वी. की लोकप्रियता में नये आयाम जुड़े हैं। देश भर में लगभग 40 हजार केबल आपरेटरों ने मनोरंजन की दुनिया

का जबरदस्त विस्तार किया है। केबल टी.वी. अब लगभग एक करोड़ घरों में अपने कार्यक्रम उपलब्ध करा रहा है। केबल उद्योग का लगातार विस्तार हो रहा है और यह ज्यादा से ज्यादा घरों को अपने जाल में समेटता जा रहा है। जहां तक वीडियो का प्रश्न है यह देश की बड़ी आबादी के लिए मनोरंजन का सशक्त साधन बन गया है। वीडियो में मुख्य रूप से फिल्में दिखाई जाती हैं। आज घरों में, रेस्तरां में, यहां तक कि दूर-दराज के गांवों में वीडियो काफी हद तक छा गया है। यह बसों में फिट कर दिया जाता है और देश की अमीर जनता के लिए वीडियो वाली बसों से यात्रा करना स्टेटस का प्रतीक माना जाने लगा है। लेकिन इन सबके बावजूद ग्रामीण क्षेत्रों में इनका प्रभाव बहुत मामूली है। हमारी भोली-भाली गांव की जनता शायद इतना पैसा देने की स्थिति में नहीं होती और केबल आपरेटरों का दृष्टिकोण तो पूर्णतः व्यावसायिक ही होता है।

रेडियो : देश में सबसे ज्यादा प्रभावी नेटवर्क रेडियो का है। टेक्निकल रूप से रेडियो की पहुंच पूरे देश में है। औसत प्रति सौ व्यक्तियों पर देश में 4.4 रेडियो या ट्रांजिस्टर सेट हैं। लेकिन यहां भी वही विरोधाभास है। कुल 6 करोड़ रेडियो सेटों में से 80 प्रतिशत शहरी जनता के पास हैं और देश की 74 प्रतिशत ग्रामीण आबादी में से केवल 52.5 प्रतिशत के पास 60 लाख सेट हैं।

ग्रामीण विकास के लिए मीडिया की भूमिका

गांवों के समग्र विकास के लिए आवश्यक है कि मीडिया के दृष्टिकोण में मूलभूत परिवर्तन लाया जाए। मीडिया जानकारों को अपने बड़े-बड़े कार्यालयों से निकल कर ग्रामीण स्तर पर जाकर उनकी समस्याओं से आत्मसात होना पड़ेगा, तभी वे ग्रामीणों की समस्याएं समझ सकेंगे और उन तक पहुंचा सकेंगे जिन पर ग्रामीण कल्याण कार्यक्रमों का दायित्व है। गांवों के विकास के लिए जरूरी है कि गांवों के लोगों की आवश्यकतानुसार योजनाएं बनाई जाएं। ये योजनाएं वास्तविक स्थिति के अनुरूप आधुनिक और वहां की लोगों की आकांक्षाओं के अनुसार होनी चाहिए। साथ ही लक्ष्य ऐसे होने चाहिए, जो प्राप्त किए जा सकें। योजनाएं तैयार करके धन की व्यवस्था की बागडोर स्थानीय लोगों को सौंपी जानी चाहिए, जो इन्हें पूरा कर सकें और स्थानीय जनता की आवश्यकताओं और भावनाओं का ध्यान रखकर उनके सहयोग से इन्हें अंजाम दे सकें। इस लक्ष्य को प्राप्त करने में ग्रामीण प्रेस, स्थानीय रेडियो स्टेशनों, दूरदर्शन के ग्रामीण कार्यक्रमों और विस्तार सेवाओं को आवश्यक भूमिका निभानी होगी।

समाचार-पत्रों की भूमिका : विकास में समाचार-पत्रों को अपना दायित्व कारगर ढंग से निभाना होगा। उन्हें ग्रामीण परिप्रेक्ष्य के बारे में ज्यादा समाचार देने होंगे। इससे न केवल गांव के लोगों को विकास कार्यों और उनके बारे में बनाई गई योजनाओं के बारे में जानकारी मिल सकेगी बल्कि वे उनका पूरा फायदा उठा सकेंगे और अपने आपको विकास प्रक्रिया का अंग समझेंगे तथा उनको पूरा करने में सक्रिय सहयोग देने लगेंगे जो शायद हमारे विकास की सबसे बड़ी कमी रही है। इस संदर्भ में समाचार-पत्रों को चीन का अनुसरण करना होगा। चीन का ग्रामीण जनता को समर्पित 'पीजेंट्स डेली' चार पृष्ठ का दैनिक अखबार है जिसकी दस लाख से ज्यादा प्रतियां बिकती हैं। इसका मूल्य 60 पैसे के बराबर है जो लोग आसानी से दे सकते हैं। समाचार-पत्र की नीति है कि इसके हर रिपोर्टर और संपादक को साल में कम-से-कम दो महीने गांव में बिताने पड़ते हैं। इससे न केवल उन्हें गांव के लोगों की समस्याओं की जानकारी मिलती है बल्कि वे उनकी भावनाओं, आकांक्षाओं और आवश्यकताओं को अच्छे ढंग से समझ सकते हैं। स्वाभाविक है ऐसी स्थिति में अधिकारियों को सही फीड-बैक मिलता है और कार्यक्रम ग्रामीण जनता की आवश्यकतानुसार बनाए जाते हैं। कहने की जरूरत नहीं कि इन हालात में ग्रामीण जनता स्वतः ही पूरा सहयोग देगी और योजनाओं के अपेक्षित परिणाम प्राप्त होंगे।

टेलीविजन की भूमिका : आज के परिप्रेक्ष्य में टेलीविजन कितनी सशक्त भूमिका निभा सकता है, कहने की जरूरत नहीं। दूरदर्शन का प्रसारण लगभग 85 प्रतिशत जनता तक पहुंचता है। साथ ही, उपग्रह प्रसारण, केबल नेटवर्क और वीडियो दुनिया भर में हो रही गतिविधियों की जानकारी प्रदान करते हैं। परंतु टेलीविजन, विशेष रूप से दूरदर्शन को, अपने कार्यक्रमों को ग्रामीण परिप्रेक्ष्य के अनुसार बदलना होगा। मनोरंजन जीवन का अभिन्न अंग है, इसमें दो राय नहीं हो सकती। इनको इस प्रकार बदला जा सकता है जिसमें ग्रामीण पृष्ठभूमि का ज्यादा समावेश हो। खेती के बारे में ज्यादा समाचार देने के साथ-साथ कार्यक्रमों में ग्रामीण क्षेत्रों के लिए दी जा रही सुविधाओं को और स्थान दिया जाना चाहिए। दूरदर्शन सामाजिक और आर्थिक विकास का साधन तो है ही, अशिक्षा और अज्ञान को दूर करने में भी सक्रिय भूमिका निभा सकता है। दूरदर्शन पर ग्रामीण जनता के लिए बहुचर्चित कार्यक्रम 'कृषि दर्शन' दूरदर्शन का अमोघ हथियार है। इस कार्यक्रम के जरिये गांव की अधिकांश जनता को खेती की आधुनिकतम तकनीकों की जानकारी तो दी ही जाती है, इसमें परिवार नियोजन, स्वास्थ्य, स्वच्छता आदि के साथ-साथ स्वस्थ मनोरंजन भी प्रदान किया जाता है। ग्रामीण जनता की इस कार्यक्रम के बारे में क्या राय है, यह जानने के लिए हरियाणा में हिसार जिले के तीन गांवों में सर्वेक्षण कराया गया। इससे जो परिणाम प्राप्त हुए, सचमुच चौंकाने वाले थे। एक तो यह कि ग्रामीण जनता स्वयं इस कार्यक्रम को इतना महत्वपूर्ण नहीं मानती। इसलिए इसे नियमित रूप से देखना भी उनकी दिनचर्या में शामिल नहीं है और जो देखना भी चाहते हैं, वे बिजली न होने के कारण देख नहीं पाते।

रेडियो की भूमिका : चीन, आस्ट्रेलिया, कनाडा, इटली जैसे अनेक देशों में ग्रामीण जनता तक पहुंचने में रेडियो का पूरा फायदा उठाया गया है। देश के विशाल आकार, सड़कों की कमी और शिक्षा की कमी को देखते हुए निस्संदेह हमारे देश में ग्रामीण जनता तक इस माध्यम के द्वारा ही पहुंचा जा सकता है। मीडिया को ग्रामीण लोगों के करीब लाने की दिशा में 'स्थानीय रेडियो स्टेशन' बड़ा सार्थक प्रयास है। विभिन्न जलवायु क्षेत्रों में खेती की जानकारी स्थानीय रेडियो स्टेशनों से बखूबी दी जा

(शेष पृष्ठ 22 पर)

ग्रामीण समस्याओं के सार्थक समाधान की ओर

डा. दिनेश मणि*

विगत अनेक वर्षों से केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा अपने बजट का एक बड़ा भाग गरीबी उन्मूलन, रोजगार-सृजन तथा बुनियादी सुविधाओं के विकास पर व्यय किये जाने के बावजूद यदि अपेक्षित परिणाम नहीं प्राप्त किये जा सके हैं, तो इसका मुख्य कारण संसाधनों का अभाव न होकर उनका सही ढंग से इस्तेमाल न किया जा सकना रहा है।

वर्तमान में प्रशासनिक संस्कृति का विकास कुछ इस तरह से हुआ है कि ग्रामीण स्तर के अतिरिक्त अन्य सभी स्तरों पर नियुक्त सरकारी अधिकारियों की भूमिका पर्यवेक्षक मात्र की रह गई है, जो वस्तुत: कार्यक्रमों के सफल क्रियान्वयन तथा उनकी गुणवत्ता के प्रति प्रत्यक्षत: उत्तरदायी नहीं रह गये हैं। अतएव सुधार की दृष्टि से यह आवश्यक है कि ग्राम स्तरीय कार्यकर्ताओं के अतिरिक्त अन्य उच्चतर स्तरों पर भी योजनाओं की गुणवत्ता सुनिश्चित करने के दायित्वों का स्पष्ट निर्धारण हो।

समस्याएं बढ़ रही हैं

देश के पांच लाख से अधिक गांवों में 74 प्रतिशत से अधिक आबादी रहती है। इनमें से तीन-चौथाई से अधिक लोग पुराने तरीकों से ही खेती कर रहे हैं। गांवों के पारंपरिक काम-धन्धे ठप्प या लुप्त होते जा रहे हैं। आबादी बेतहाशा बढ़ती जा रही है। बेरोजगारी भी उस अनुपात से कहीं अधिक बढ़ रही है। अशिक्षित मजदूर तो आंशिक या पूर्ण बेकारी से परेशान हैं ही, शिक्षित लोगों को भी रोजगार मिलना मुश्किल हो रहा है। विकास और प्रगति का लाभ वास्तव में सीमित लोगों तक ही पहुंच रहा है। इसी के कारण कुण्ठा, अपराध, हिंसा तथा अन्य सामाजिक-आर्थिक दोष पनप रहे हैं। सीमित साधनों ने शोषण, भ्रष्टाचार व नैतिक मूल्यों के ह्रास को खूब प्रोत्साहन दिया है। अमीरी और गरीबी के बीच अन्तर कम होने के बजाय निरन्तर बढ़ रहा है। समाज का एक बड़ा भाग रोटी, कपड़ा और मकान जैसी जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं को भी प्राप्त कर पाने में असमर्थ है।

*प्राध्यापक, रसायन विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण जरूरी

सच कहा जाए तो इन समस्याओं का समाधान मोटे तौर पर तीन क्षेत्रों से जुड़ा हुआ है—कृषि, लघु और कुटीर उद्योग तथा वित्तीय संसाधन। इन सबसे जुड़ा है—जनसंख्या नियंत्रण। अगर आबादी में वृद्धि की दर पर प्रभावी अंकुश लग जाए तो समस्या काफी आसान हो सकती है क्योंकि तब दस हाथों को काम दिला देने पर बीस नये खाली हाथ सामने आ जाने का दुष्चक्र नहीं रहेगा। गांवों में यदि स्थानीय संसाधनों और अवसरों का ही पर्याप्त और सही दोहन किया जाए तो रोजगार की भारी क्षमताएं विद्यमान हैं। इनमें कृषि का महत्व सबसे अधिक है क्योंकि इसके साथ अनेक सहायक तथा पूरक क्षेत्र जैसे पशुपालन, मछलीपालन, मुर्गीपालन, मधुमक्खी पालन के अलावा कुटीर और लघु उद्योग जुड़े हैं। कुटीर और लघु उद्योगों के लिये आवश्यक कच्चा माल अधिकांशत: कृषि क्षेत्र से ही प्राप्त होता है। विशेषकर नगदी फसलों जैसे—गन्ना, कपास, फल, सब्जी, मूंगफली आदि में काम के अवसर बढ़ने के साथ-साथ आय में वृद्धि भी की जा सकती है। इनके विकास के साथ इनसे जुड़े कुटीर उद्योगों जैसे फलों की डिब्बाबन्दी को भरपूर बढ़ावा दिया जा सकता है।

इन काम-धन्धों के लिये आवश्यक पूंजी दिलाने में सरकार अगर थोड़ी चुस्ती, ईमानदारी तथा समझ-बूझ से कार्यक्रम चलाए तो गांवों से शहरों की ओर पलायन काफी हद तक रोका जा सकता है। इन इकाइयों में बनने वाला सामान शहरों में सहकारी व अन्य उपभोक्ता केन्द्रों पर अधिकाधिक बेचने के अगर जोरदार विशेष प्रयास हों तो इनकी मांग और खपत की सुखद स्थिति बनने में देर नहीं लगेगी। खादी ग्रामोद्योग केन्द्र इसके ठोस तथा प्रेरणाप्रद उदाहरण हैं।

क्षेत्र विशेष के अनुरूप प्रौद्योगिकी का चयन

यहां यह कहना भी प्रासंगिक होगा कि जीवन स्तर में सुधार के लिये अन्य दूसरे मापदण्डों में आत्मनिर्भरता, पारिस्थितिकी और पर्यावरण की

(शेष पृष्ठ 17 पर)

ग्रामीण महिलाओं में साक्षरता अभियान : अनुभवात्मक पहलू

डा. विमला उपाध्याय*

देश की आधी आबादी से भी अधिक है, ग्रामीण महिलाओं की आबादी। कारण, भारत गांवों में बसता है। पांच लाख से अधिक गांव हैं यहां, जहां की औरतें आज भी 'असूर्यम्पश्या' (जिसने सूर्य के दर्शन न किए हों, व्यंग्यार्थ में ज्ञान की रोशनी से भी दूर) हैं। जिंदगी की सबसे जरूरी चीज है—अभिव्यक्ति। मनुष्य विचारता है, मनन करता है, चिंतन करता है। इसलिए मनुष्य कहलाता है, अन्यथा पशु और मनुष्य में भेद ही क्या है? अपना विचार-मनन करना और दूसरों तक पहुंचाना, दूसरे के विचारों को सुनना, प्रभावित होना—यही मनुष्य होने की शर्त है। विचार-विनिमय, संचार और उसे बनाए रखने के लिए किसी लिपि को पहचानना और उसमें लिखने की क्षमता एक कार्यात्मक जरूरत बन गई। जिस गति से दुनिया आगे बढ़ती गई, लोगों के मध्य पारस्परिक संवाद विकसित होते गए, उसी गति से पढ़ने-लिखने की अक्षमता एक बड़ी अयोग्यता बनती गई। विशेषकर गांवों की महिलाओं के लिए जमाने की रोशनी में चलना मुश्किल हो गया।

पिछड़ापन ही साक्षरता में बाधक

जिन गांवों में महिलाएं साक्षरता अभियान में जुटीं, अपनी रूढ़ियों-परंपराओं की दीवारें तोड़कर बाहर आईं, उनमें उल्लेखनीय परिवर्तन हुए। वे सामाजिक परिवर्तन तथा आर्थिक विकास के बुनियादी सरोकारों को समझने लगीं। पारस्परिक संवाद को बढ़ावा मिला और वे अपनी बातें निर्भीक होकर कहने लगीं। समाज पर इसका प्रभाव पड़ा। उनमें आत्मविश्वास जगा। फलतः आत्म-सम्मान का भाव बढ़ा। वे अपनी सामाजिक और कानूनी स्थिति के प्रति सचेत बनीं। अर्थोपार्जन हो या परिवार और समुदाय के मामलों में अपनी बात रखनी हो, वे खुलकर सामने आने लगीं।

साक्षरता अभियान के कारण उनमें जो जागृति आई, उसने सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक जीवन में औरतों की व्यापक भागीदारी के लिए सामाजिक स्वीकृति का निर्माण किया। इससे औरतों का न केवल आत्मबल बढ़ा, बल्कि सामाजिक-आर्थिक जीवन में उनकी भागीदारी रोकने वाली पितृसत्तात्मक शक्ति (प्रतिकूलता के अर्थ में) तत्काल स्थगित हो गई और औरतें उत्साह से इस अभियान में भाग लेने लगीं। स्वयंसेवक (साक्षरता), शिक्षक बहुधा महिलाओं के पड़ोस के होते हैं। उनसे उनके संबंध मधुर होते हैं। इसलिए पारस्परिक संवाद से साक्षरता को बढ़ावा मिला। महिलाओं ने साक्षरता की एकरसता को लोकगीतों तथा सांस्कृतिक गतिविधियों से तोड़ा और उसे सरस तथा मनोरम बनाया। इस दिशा में उनकी प्रगति का नतीजा यह है कि अनुभवों के पारस्परिक आदान-प्रदान को प्रोत्साहन मिला। वे निजी और सामाजिक समस्याओं तथा जरूरतों पर विचार-विमर्श कर सकती हैं, जूझ सकती हैं, सकारात्मक निर्णय ले सकती हैं। बंगाल, केरल और महाराष्ट्र के गांवों के परिणाम उत्साहजनक रहे।

वहीं दूसरी ओर, बिहार तथा उत्तर प्रदेश के गांवों में महिला साक्षरता को बाधाओं की विशाल सेना ने क्षत-विक्षत कर दिया। इसके कारण हैं:

(क) पुरुष सत्तात्मक समाज की मान्यताएं : औरत घर से निकलेगी, पढ़ेगी-लिखेगी, बुरी सोहबत में पड़ जाएगी। एक बार उसकी डोली आई है, अब अर्थी ही जाएगी।

(ख) आर्थिक दबाव : घर का काम-काज कौन देखेगा? मसलन खाना बनाना, बच्चे पालना, घर के अन्य कार्य करना। आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्ग तो दिन-रात काम में लगा रहता है।

(ग) सामाजिक रूढ़ियां : मसलन औरतों का बाहर निकलना कुल की मर्यादा के खिलाफ है। मुसलमानों में पर्दा प्रथा और पुरुषों के वर्चस्व को एक भय भी कि औरतें जगीं, तो अपने अधिकार के लिए डटेंगी, सामना होगा और फिर स्थिति हास्यास्पद हो सकती है, उनका मान-सम्मान घट सकता है।

महादेवी वर्मा ने अपने एक लेख में औरतों के शोषण तथा पुरुषों के प्रति उसके भय का निदान किया है। उनका मानना है कि नारियां जब अपने जीवन का एक लक्ष्य निर्धारित कर लेती हैं और उसमें लग जाती हैं, तो पुरुष न उनके भय का कारण रहता है, न बाधक तत्व। उसे घर-परिवार में रहना है, तो नारी से समझौता करना पड़ता है। नारियां इसलिए परेशान हैं कि वे साक्षरता से दूर हैं, जागरण से दूर हैं, स्वयं अपनी शक्ति की पहचान नहीं कर पाती हैं। एक ही रास्ता है—साक्षरता अभियान में जुटना। इसी से व्यक्तित्व का विकास होता है और संभावनाएं उजागर होती हैं।

* प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग, एस.एस.एल.एन.टी. स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय, धनबाद।

दुष्यंत कुमार ने लिखा है :

एक चिनगारी कहीं से ढूंढ लाओ दोस्तो।
इस दिए में तेल से भीगी हुई बाती तो है।

नारी में क्षमता है, गुण हैं, संभावनाएं हैं, तेल से भीगी इस बाती को एक चिनगारी भर की जरूरत है। एक दीपक जला, आस-पास आलोक फैला, फिर कई दिए जल उठेंगे। घर-घर उजियाला फैलेगा। अमावस्या का अंधकार कटेगा। रोशनी का सैलाब उमड़ेगा।

साक्षरता अभियान और सरकार की योजनाएं

स्वाधीन भारत को एक ऐसी शिक्षा विरासत में मिली, जो व्यापक स्तर पर असंतुलन से ग्रस्त थी, विभिन्न क्षेत्रों में ही असमानता नहीं थी बल्कि एक ही क्षेत्र के अंदर असमानता थी। इस व्यवस्था में कुछ चुने हुए विशिष्ट वर्ग ही शिक्षा पा सकते थे। फलस्वरूप शिक्षित और निरक्षरों की संख्या में गहरा अंतर होता गया। 1947 में देश की साक्षरता दर 14 प्रतिशत थी। महिला साक्षरता दर 8 प्रतिशत थी। 33.33 प्रतिशत बच्चे स्कूल जाते थे। इस शैक्षिक असमानता को बढ़ाने वाले घटक थे—आर्थिक असमानता, लिंग भेद तथा कठोर सामाजिक विभाजन। इसलिए निरक्षरता का उन्मूलन, आजादी के बाद भारत सरकार की प्रमुख चिंता बन गई। एक साक्षर आबादी और 6-14 वर्ष के आयु वर्ग के सारे बच्चों की सार्वभौमिक शिक्षा राष्ट्र-निर्माण का अति महत्वपूर्ण मुद्दा मानी गई।

इस ओर संविधान तथा पंचवर्षीय योजनाओं का समुचित ध्यान गया। इस प्रकार प्रौढ़ों के बीच निरक्षरता उन्मूलन की अनेक योजनाएं, अनेक विकल्पों की व्यवस्था हुई। प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-56) में कार्यान्वित 'सामाजिक शिक्षा' 1959 में शुरू की गई। 'ग्राम शिक्षण मुहिम' 1967-68 में शुरू हुई। 'किसान कार्यात्मक साक्षरता परियोजना' पांचवीं योजना के प्रारंभ में काम करने लगी। इसी में 'अनौपचारिक शिक्षा' और 'प्रौढ़ महिला कार्यात्मक साक्षरता' शामिल हैं। ये कार्यक्रम अस्तित्व में आए जरूर, पर क्षणिक और खानापूर्ति भर साबित हुए। निरक्षरता उन्मूलन का प्रथम राष्ट्रव्यापी प्रयास 'राष्ट्रीय प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम' के साथ 1978 में प्रारंभ हुआ। यह आधारित था—प्रौढ़ शिक्षा केन्द्रों की स्थापना पर, जहां समूहों में शिक्षा का प्रावधान था। परंतु वास्तविक उपलब्धि मई 1988 में 'साक्षरता मिशन' की स्थापना के साथ प्रारंभ हुई।

साक्षरता के दो घटक : जन अभियान और वातावरण-निर्माण

उन जिलों में महिला साक्षरता को अपूर्व सफलता मिली, जहां व्यापक स्तर पर जन-अभियान चला। अनुकूल वातावरण का निर्माण हुआ। केरल के एक जिले अर्णाकुलम में लोगों ने साक्षरता को नए तरीके से अपनाया और उसे संपूर्ण साक्षरता का अभियान माना। शनैः शनैः न केवल केरल में, बल्कि भारत के कई जिलों में इसे दोहराया गया। सर्वेक्षण तथा सफलता के आंकड़ों से पता चलता है कि व्यापक जन अभियान, विशेषकर महिलाओं के लिए, को तभी मुकम्मल पहचान मिली तथा सफलता भी, जब वह कोई तत्कालीन और प्रासंगिक समस्या लेकर आगे बढ़ा। उदाहरण के तौर पर—आंध्र प्रदेश के नेलौर जिले का अरक विरोधी (शराब विरोधी) आंदोलन साक्षरता अभियान का पर्याय ही बन गया था। साक्षरता एक

सदस्यता कूपन

मैं/हम कुरुक्षेत्र का नियमित ग्राहक बनना चाहता हूं/चाहते हैं।

शुल्क : एक वर्ष के लिए 50 रुपये का
दो वर्ष के लिए 95 रुपये का
तीन वर्ष के लिए 135 रुपये का

(जो लागू नहीं होता, उसे कृपया काट दें)

डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर क्रमांक ..... दिनांक ..... संलग्न है।

नाम (स्पष्ट अक्षरों में) .....

पता .....

.....

पिन .....

इस कूपन को काटिए और इस पृष्ठ की पिछली ओर बने बाक्स के नं. 3 में दिए गए पते पर भेजिए।

संवाद बनाती है, परस्पर जानना-पहचानना, सामूहिक कार्य में साथ-साथ चलने की प्रतिबद्धता, सुख-दुख में हमसफर का भाव। साक्षरता के क्रम में उन्होंने अनुभव किया कि शराब के कारण उनका परिवार अस्त-व्यस्त हो रहा है। उन्होंने अपनी तथा बहनों की क्षत-विक्षत जिंदगी को महसूस किया और संगठित होकर सामूहिक अभियान छेड़ दिया—'अरक विरोधी आंदोलन'। यहां शराबबंदी या शराब का विरोध मुख्य मुद्दा नहीं था। मुख्य मुद्दा था कि साक्षरता को प्रथम प्राथमिकता देने के कारण ही यह तेज और शौर्य प्रकट हुआ, जिसने शराब के दिग्गज ठेकेदारों को धराशायी कर दिया। गांवों से शराब की दुकानें उठ गईं। चोरी-छिपे पीने वाले भी बेनकाब हुए।

इसलिए यह जरूरी है कि हरेक समाज की महिलाएं न केवल साक्षर हों, बल्कि देश-काल की परिस्थितियों से वाकिफ भी हों। विनाशक रूढ़ियों, रीति-रिवाजों, प्रचलन के खिलाफ आवाज उठाएं। जहां शादी-विवाह, मुंडन-उपनयन, श्राद्ध-संस्कार में कर्ज लेकर अपव्यय होता है, जहां दहेज के बिना लड़कियां कुंवारी रह जाती हैं, जहां कर्ज लेकर जन्म से मृत्यु तक के सोलह संस्कार संपन्न होते हैं, वहां इसके विरुद्ध संघर्ष छेड़ने की जरूरत है। अनवरत संघर्ष। यह कार्य महिलाएं जिस संगठन और उत्साह से कर सकती हैं, कोई दूसरा नहीं कर सकता। तमिलनाडु के पुद्दुकोट्टई जिले में पत्थर खदानों में कार्यरत मजदूरनियों को साक्षरता के परचम तले ही संगठित किया गया। ठेकेदारों के शोषण से मुक्ति के लिए जबर्दस्त मुहिम छेड़ी गई। इसी जिले में महिलाओं ने साइकिल चलाना सीखकर, सामाजिक पहुंच की सीमा तोड़ी, नया विश्वास अर्जित किया और नई-नई उपलब्धियां प्राप्त हुईं।

जन अभियान के बाद दूसरा घटक है—वातावरण-निर्माण। पुरुष सत्तात्मक समाज में न केवल महिलाओं के पति, बल्कि स्वयंसेवकों के साथ-साथ प्रबुद्ध वर्ग इस कार्य को प्रोत्साहन दे। महिलाओं को भले ही अपने काम-काज निपटाने में कुछ अधिक मेहनत करनी पड़े, पर परिवार तथा समाज उनके साक्षरता अभियान को अहमियत दे, प्रोत्साहन दे।

जब साक्षरता का अर्थ केवल लिखना-पढ़ना और जानना, गिनती करना रहेगा, तो वह संकुचित हो जाएगा, एकरस और सीमित भी, पर उत्तर-साक्षरता जब ज्ञान की परिधि का व्यापक विस्तार करेगी, जब हम साक्षरता को विकास की कुंजी कहते हैं या कम-से-कम उसे विकास की वाजिब शर्त मानते हैं, वंचित वर्गों के सबलीकरण का जरिया मानते हैं, तो स्पष्ट है कि साक्षरता अनेक सिद्धियों का द्वार खोलती है, अंधकार के खिलाफ लड़ाई का हथियार बनती है। फिर यह प्रश्न उठ ही नहीं सकता कि घर-परिवार में साक्षरता केन्द्रों से आई महिलाओं का आदर न हो, उन्हें अहमियत न मिले, उन्हें अनुकूल अवसर न मिले।

समाज का प्रत्येक प्रबुद्ध, नर-नारी यदि इस अभियान से जुड़ता है, इसे एक सामूहिक और व्यापक प्रयास मानता है, एक-एक को जगाने-सिखाने का व्रत लेता है, तो महिला साक्षरता अवश्य सफल होगी। गांव के परिवारों के रहन-सहन, काम-काज, रीति-रिवाज में भी किंचित परिवर्तन हो जाए, तो ग्रामीण महिला साक्षरता अपना लक्ष्य पाकर रहेगी। ❑

1. हम दिल्ली से *योजना* **अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू, पंजाबी और उड़िया में**
   कुरुक्षेत्र **हिन्दी और अंग्रेजी में**
   आजकल **हिन्दी और उर्दू में**
   और *बाल भारती* **हिन्दी में** प्रकाशित करते हैं।
2. डिमांड ड्राफ्ट/पोस्टल आर्डर निदेशक प्रकाशन विभाग को नई दिल्ली में देय होना चाहिए।
3. कूपन विज्ञापन और प्रसार संख्या प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक 4, लेवल-7, आर.के. पुरम, नई दिल्ली-110066 के पते पर भेजिए।
4. सदस्य बनने के लिए आप हमारे निम्नलिखित केन्द्रों पर भी सम्पर्क कर सकते हैं :

   प्रकाशन विभाग : पटियाला हाउस, तिलक मार्ग, नई दिल्ली-110001; सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली-110001; कामर्स हाउस, करीमभाई रोड, बालार्ड पायर, मुंबई-400038; 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता-700069; राजाजी भवन, बेसेंट नगर, चेन्नई-600090; बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800004; निकट गवर्नमेंट प्रेस, प्रेस रोड, तिरुअनंतपुरम-695001; 27/6, राम मोहन राय मार्ग, लखनऊ-226019; राज्य पुरातत्वीय संग्रहालय बिल्डिंग, पब्लिक गार्डन्स, हैदराबाद-500004; प्रथम तल, 'एफ' विंग, केंद्रीय सदन, कोरा मंडल, बंगलौर-560034; सम्पादक, पेयोभरा, नौझम रोड, उजान बाजार, गुवाहाटी-1; सम्पादक, योजना (गुजराती), राम निवास, पालदी बस स्टाप के पास, सरखेज रोड, अहमदाबाद

   पत्र सूचना कार्यालय : सी.जी.ओ. काम्पलैक्स, 'ए' विंग, ए.बी. रोड, इंदौर (म.प्र.); 80, मालवीय नगर, भोपाल-462003; के-21, नंद निकेतन, मालवीय मार्ग, 'सी' स्कीम, जयपुर-302003
5. शुल्क प्राप्त होने के बाद नियमित रूप से पत्रिका के अंक मिलने शुरू होने में आठ से दस सप्ताह का समय लगता है।

सच होते सपने

डा. शीतांशु भारद्वाज

गोपुली को लगने लगा जैसे कि उसके मां-बाप ने उसे जीते-जी ही नरक-कुंड में झोंक दिया हो! आखिर उन्होंने क्या सोच-समझ कर, उसे इस कंगले परिवार को दिया? वह तो बचपन से ही अपनी आंखों में अनोखे सपने संजोया करती थी।

''ऐ बहू!'' सास फिर से बड़बड़ाने लगी, ''कमाने का कुछ हुनर सीख! इस खानदान में ऐसा ही चला आ रहा है।''

''वाह रे खानदान!'' गोपुली फट ही पड़ी, ''लुगाई कमावे और मर्द उसकी कमाई पर गुलछर्रे उड़ाए! लानत है, ऐसे खानदान पर!''

उस बड़े गांव में दक्षिण दिशा में चार-छह शिल्पकार परिवार सदियों से रहते आ रहे हैं। न जाने कितनी पीढ़ियों से वे ठाकुरों की चाकरी करते आ रहे हैं! देश का विकास हुआ होगा। किंतु यहां के इन परिवारों पर ढाक के तीन पात वाली कहावत ही लागू होती है। विकास के नाम पर उन्हें कुछ भी तो नहीं मिला। आज भी वे पराश्रयी जीव हैं।

उन परिवारों में से पनराम का परिवार भी नाच-मुजरे करते हुए अपना भरण-पोषण करता आ रहा था। उसकी दादी, परदादी, मां, पत्नी सभी तो नाच-मुजरे करते रहे हैं। ब्याह-शादियों के मौकों पर तो उन्हें दूर-दूर से बुलावा आया करता था। लुगाइयां महफिलों में नाच-मुजरे करतीं और मर्द सुलफे में डूबे रहते। उनकी यही नियति हुआ करती थी।

''गोपा!'' कभी उसकी सहेली ने कहा था, ''वहां तो जाते ही तुझे ठुमके लगाने होंगे। पांवों पर घुंघरू बांधने होंगे।''

''हूं!'' उसने मुंह बना लिया था, ''नाचे मेरी जूती! मैं ऐसे खोटे काम नहीं करूंगी।''

लेकिन उस दिन गोपुली की तमाम आशाओं पर पानी फिर गया था, जिस दिन हयात बोला था, ''दो दिन बाद हमें अमधार की बरात में जाना है। वहां के ठाकुर खुद ही न्योता देने आए थे।''

''नहीं।'' उसने स्पष्ट शब्दों में मनाही कर दी थी, ''मैं नाच-मुजरे नहीं करूंगी।''

''क्या?'' पति के हाथों से जैसे तोते ही उड़ गए थे।

''कान खोल कर सुन लो!'' वह भी शेरनी ही बन बैठी थी, ''अपने मां-बाप से भी कह दो कि गोपुली कहीं नहीं नाचेगी।''

''फिर ये पापी पेट कैसे भरेंगे, बहू!'' सामने ही हुक्का गुड़गुड़ा रहे पनराम ने उसकी ओर एक जलता हुआ प्रश्न छोड़ दिया था।

''ये तुम सोचो!'' उसका वही मुंहफट उत्तर था, ''यह सोचना मर्दों का काम होता है।''

गोपुली के उस व्यवहार से उस पराश्रित परिवार को जैसे लकवा ही मार गया है। आंगन के कोने में बैठा हुआ पनराम हुक्का गुड़गुड़ाता जा रहा था। गोपुली की सास ने जैसे खाट ही पकड़ ली थी। उधर, आंगन की दीवार पर बैठा हुआ हयात भांग की पत्तियों को हथेली पर मल-मल कर उनसे अतर निकाल रहा था। एक गोपुली ही थी, जो चैतन्य अवस्था में थी।

''फिर क्या कहती हो?'' हयात ने वहीं से पूछा।

''देखो!'' गोपुली ने अपना वही निश्चय दोहरा दिया, ''मैं मेहनत-मजदूरी करके तुम लोगों के पेट को पाल लूंगी। पर पांवों पर घुंघरू नहीं बांधूंगी।''

सास के कान में घुंघरू शब्द क्या पड़े कि उसकी मृताशा फिर से जीवित हो आई। उसे लगा जैसे बहू की अक्ल ठिकाने लग आई हो। खाट से उठ कर वह उस पुराने संदूक को खोलने लगी, जिसमें नाच-मुजरे का सामान रखा हुआ था। उसने वहां से घुंघरू निकाल लिए। उन घुंघरूओं के साथ उनके खानदान का इतिहास जुड़ा हुआ है। उन पर हाथ फेरती हुई वह आंगन में चली आई। उसने पूछा, ''हां तो बहू! तू पांवों पर घुंघरू बांधेगी या पायल?''

''कुछ भी नहीं।'' गोपुली सास पर बिफर ही उठी।

हयात सुलफे की सारी तैयारी कर चुका था। उसने जोर का कश खींचा। चिलम का सारा तंबाकू जल उठा। दो-तीन कश खींच चिलम उसने पनराम को थमा दी, ''लो बाबू, तुम भी गम गलत करो।''

''जै हो!'' पनराम ने भी साफी का सुट्टा लगाया, ''जै भोले शंकर!''

बाप-बेटा भांग के नशे में धुत हो आए थे। सास बोली, ''ये तो ऐसे ही रहेंगे।''

''हां।'' गोपुली ने भी जड़ दिया, ''ये काम करने वाले पंछी नहीं हैं।''

सामने की बटिया से अमधार के ठाकुर कर्णसिंह आते हुए दिखाई दिए। सास ने चिंतित स्वर में कहा, ''ठाकुर साहब आ रहे हैं। अब उनका क्या होगा?''

''जैसे आ रहे हैं, वैसे ही वापस भी चल देंगे।'' गोपुली ने कहा।

''लेकिन उनके बयाने का क्या होगा?''

''जिसने लिया है, वो लौटा देगा।'' गोपुली बोली।

ठाकुर कर्णसिंह आए तो उन्होंने छूटते ही कहा, ''देखो पनराम! तुम लोग समय से पहुंच जाना। बरात में बेशुमार लोग हैं।''

''नहीं!'' गोपुली ने बीच में ही कह दिया, ''हम नहीं आएंगे।''

सुन कर ठाकुर साहब सुन्न पड़ गए। उन्हें अपने कानों पर विश्वास ही नहीं हुआ। उन्होंने पनराम से पूछा, ''क्यों रे पनिया! मैं यह क्या सुन रहा हूं?''

''वंश में बनाड़ पैदा हो आया है।'' पनराम ने ठाकुर के लिए दीवार पर दरी बिछा दी।

ठाकुर दीवार पर बैठ कर गोपुली की नाप-जोख ही करने लगे। गोपुली को उनका इस प्रकार देखना अच्छा नहीं लगा। वह चुपचाप उधर से नीचे की क्यारियों में जाकर वहां निराई-गुड़ाई करने लगी। 'काश! उनके पास

भी दो-चार खेत होते!' वह ऐसा ही कुछ सोचने लगी। पहाड़ के कई शिल्पकार परिवार गांवों को छोड़ कर नीचे मोहान-रामनगर की ओर बस गए हैं। सरकार ने वहां उन्हें खेती की जमीन दी है। फिर यही परिवार क्यों रह गया?

अमधार के ठाकुर बैरंग ही लौट गए। गांव भर में गोपुली चर्चित होने लगी। जितने मुंह उतनी ही बातें! सास ने उससे पूछा, "क्यों री, नाचेगी नहीं, तो फिर खाएगी क्या?"

"भगवान ने मुझे दो हाथ दे रखे हैं।" गोपुली अपने हाथों को देखने लगी, "इन्हीं से कमाऊंगी-खाऊंगी। इनसे मैं तुम्हारा भी पेट भर सकती हूं।"

तीसरे दिन उस गांव में पटवारी चला आया। वह गोपुली के मायके के ब्राह्मण परिवार का युवक था। वह गोपुली से भी मिलने आया। कुशल-क्षेम के बाद गोपुली ने उससे पूछा, "क्यों बिशन दा! हमें सरकार की ओर से कहीं जमीन नहीं मिल सकती क्या?"

"उस पर तो हाड़-तोड़ मेहनत करनी होगी।" हयात बोल पड़ा।

"तो हराम का कब तक खाते रहोगे?" गोपुली पति के लिए आंखें ही तरेरने लगी, "निखट्टू रहने की आदत जो पड़ चुकी है।"

"जमीन क्यों नहीं मिल सकती?" पटवारी बोला, "तुम लोग अर्जी तो दो।"

"फिलहाल तो मुझे कहीं मजदूरी दिलवाओ न!" गोपुली ने कहा।

"सड़क पर काम कर लोगी?" बिशन दत्त ने पूछा।

"हां, हो। मैं सब कर लूंगी।" गोपुली को एक नई राह दिखाई देने लगी।

"ठीक है।" बिशन दत्त खड़े होते हुए बोले, "कल सुबह तुम ऊपर सड़क पर चली जाना। मैं गोपाल सिंह मेठ को बोल दूंगा। वह तुम्हें कल से ही काम पर रख लेगा।"

बिशन दत्त गोपुली को एक नई राह दिखला गया। रात को वह सपने में सड़क पर ही काम करती रही। सुबह बिस्तर से उठते ही उसने दो बासी टिक्कड़ खाए और ऊपर सड़क पर चल दी। सचमुच उसी दिन से वह मजदूरी करने लगी। छुट्टी के बाद मेठ ने उसे चालीस रुपये थमा दिए।

गोपुली ने दुकान से आटा-नून लिया, थोड़ी-सी चीनी, चाय पत्ती भी ली। सिर पर पोटली रखे हुई वह घर चली गई। चूल्हा सुलगा कर वह रात के लिए रोटियां बनाने लगी। सास ने कहा, "ऐ बहू! तू तो बहुत ही समझदार निकली री!"

"क्या करें।" गोपुली बोली, "परिवार में किसी-न-किसी को तो समझदार होना ही पड़ता है न!"

"ठीक!" पनराम भी वहीं चले आए, "हमने कभी सोचा भी न था कि....।"

गोपुली सास-ससुर के लिए रोटियां परोसने लगी। उनको खिलाने के बाद वह स्वयं भी पति के साथ रोटी खाने लगी। हयात ने पानी की घूंट भर कर पूछा, "तुझे ये सब कैसे सूझा?"

"मरता क्या न करता?" गोपुली ने उसे उलाहना ही दे दिया, "तुम तो घर में चूड़ियां पहने रहते हो। तुमने तो कभी तिनका तक नहीं तोड़ा।"

इस पर हयात ने गर्दन झुका ली।

गोपुली को लगने लगा जैसे उस पराश्रित परिवार की बागडोर उसे ही संभालनी होगी। वह मन लगा कर, सड़क पर मेहनत-मजदूरी करने लगी। एक दिन उसने मेठ से पूछा, "दाज्यू, मैं उन्हें भी काम दिलवाना चाहती हूं।"

"हां-हां।" मेठ ने कहा, "काम मिल जाएगा।"

गोपुली घर आई तो हयात आंगन के कोने पर वही सुलफे की तैयारी कर रहा था। उसने आते ही कहा, "ये गंदी आदतें छोड़ दो। कल से मेरे साथ ऊपर सड़क पर तुम भी चला करो। मैंने मेठ से बात कर ली है।"

"मैं मजदूरी करूंगा?" हयात ने आश्चर्य से पूछा।

"तो लुगाई की ही कमाई खाते रहोगे?"

"नहीं, ऐसी बात तो नहीं है।" हयात सिर खुजलाने लगा, "तुम कहती हो तो तुम्हारे साथ मैं भी चल दूंगा।"

हयात भी सड़क पर मजदूरी करने लगा। अब उन्हें दुगुनी मजदूरी मिलने लगी। गोपुली को सास-ससुर का खाली रहना अखरने लगा। एक दिन उसने श्वसुर से पूछा, "आप रस्सियां बट लेंगे?"

"आज तक तो बटी नहीं।" पनराम बोला, "तुम कहती हो तो.....।"

"खाली बैठने से तो यही ठीक होगा।" गोपुली बोली, "दुकान पर उनकी अच्छी कीमत मिल जाया करती है।"

"बहू! मुझे भी कुछ करने को कह न।" सास ने कहा।

"आप भी बबीतो घास से झाड़ू बना दिया करो।"

अब उस परिवार में सभी तो कमाने वाले हो आए थे। बटी हुई रस्सियों और झाड़ुओं को गोपुली दुकान में बेच आती। गांव के लोग उसकी हिम्मत पर दांतों तले अंगुलियां दबाने लगे।

उस दिन गांव में ग्राम सेवक आए हुए थे। गोपुली सभापति के घर जा पहुंची। उसने निवेदन किया, "ताऊजी, हमें भी भाबर की ओर कुछ खेती की जमीन दिलवाएं न!"

"अरे हां!" सभापति हंस दिए, "मैं तो तेरे ससुर से कब से कहता आ रहा हूं। पर उसे तो....।"

"दाज्यू, आप हमारी अर्जी लिख दो न!" गोपुली ने ग्राम सेवक से अनुरोध किया।

"अर्जी क्या लिखनी है!" ग्राम सेवक ने थैले से एक फार्म निकाल लिया। उसे भर कर उसने गोपुली को दे दिया, "यहां दस्तखत कर दो!"

"ना हो!" गोपुली बोली, "इस पर तो मेरे ससुर ही दस्तखत करेंगे। अभी तो हमारे सिर पर उन्हीं की छत्र-छाया है।"

"ठीक कहती हो।" सभापति ने भी उसी का समर्थन कर दिया।

गोपुली खुशी-खुशी उस फार्म को लेकर घर

चली आई। उसे उसने श्वसुर को थमा दिया, "आप इस पर दस्तखत कर दो न!"

"ये क्या है?" पनराम ने पूछा।

गोपुली ने उन्हें सब कुछ बता दिया। पनराम ने गहरी सांस खींची, "तू ही हमारा उद्धार करेगी।"

पनराम ने निर्दिष्ट स्थान पर चार अक्षर लिख दिए—प न रा म।

उस दिन गोपुली की सास आंगन में बैठी अपने सामने लकड़ी के उसी पुरानी संदूक को खोले हुई थी। गोपुली को देख कर उसने पूछा, "हां तो बहू! फिर इन घुंघरूओं को फेंक दूं?"

"नहीं।" गोपुली ने मनाही कर दी, "पड़े रहें। गुलामी के दिनों की याद दिलाते रहेंगे।"

गोपुली ने उस पराश्रित परिवार की जैसे काया-पलट ही कर दी। घर के आगे जो भांग की क्यारियां थीं, वहां उसने प्याज-लहसुन लगा दिया। सास-ससुर भी तो काम में व्यस्त रहने लगे। पति के साथ वह सड़क पर जाकर मजदूरी करती।

गोपुली का विवाह हुए तीनेक वर्ष हो आए थे। किंतु अभी तक उसके पांव भारी नहीं हुए। सास जब-तब उसकी जांच-परख करती रहती। एक दिन उसने पूछ ही लिया, "बहू, है कुछ?"

"नहीं।" गोपुली हंस दी, "अभी तो हमारे ही खाने-खेलने के दिन हैं।"

सास चुप हो गई। हयात और पनराम भांग का नशा भूल चले थे। अब वे दोनों बीड़ी पिया करते। बीड़ी पीकर हयात को खांसी का धसका आ उठता। एक दिन उसने कहा, "अब बीड़ी-सीड़ी पीना बंद कर दो। यह आदमी को सुखा कर रख देती है।"

"ठीक है।" हयात बोला, "कोशिश करूंगा।"

आदमी यदि कोशिश करे तो क्या नहीं हो सकता? गोपुली की कोशिशें रंग लाने लगीं। अब उसे उस दिन की प्रतीक्षा थी, जब दूर तराई-भाबर की ओर उनके खुद के खेत होंगे। वह उस मिट्टी में सोना पैदा करेगी।

एक दिन सभापति ने हयात को अपने पास बुलवा लिया। उन्होंने उसे एक कागज थमा दिया, "ले रे! सरकार ने तुम लोगों को खेती की जमीन दी है।"

"किधर दी है, ताऊजी?" उसने पूछा।

"मोहान के आगे सुंगरखाल की ओर।" सभापति ने कहा।

हयात ने घर आकर वह कागज पत्नी को थमा दिया, "ले गोपुली बौराण! सरकार ने हमें खेती की जमीन दी है।"

"हैं!" पनराम की आंखें फटी-की-फटी रह गईं।

"इसे आप रख लो।" गोपुली ने वह कागज श्वसुर को थमा दिया।

पनराम ने भी उस सरकारी कागज को सिर-माथे नवाया और कहा, "तुम जैसी बहू सभी को मिल जाती तो....।"

....और, गोपुली बौराण फिर से नये-नये सपने बुनने लगी। सपने जो सच का जामा पहनते जा रहे थे। ❑

(पृष्ठ 11 का शेष)

ग्रामीण समस्याओं के सार्थक समाधान की ओर

रक्षा, अधिक से अधिक स्थानीय सामग्री का उपयोग तथा उत्पादों के आसानी से विपणन आदि को भी ध्यान में रखना चाहिये। इसके लिये ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक-आर्थिक स्थिति का गहन सर्वेक्षण करना चाहिये, क्षेत्र-विशेष की क्षमता का पता लगाना चाहिये और उपयुक्त प्रौद्योगिकी का चुनाव करना चाहिये। प्रौद्योगिकी के चयन, उसके लिये योजना बनाने, योजना को क्रियान्वित करने तथा उपयुक्त प्रौद्योगिकी के मूल्यांकन में स्थानीय लोगों का सहयोग लिया जाना चाहिये ताकि वे संगठन के संचालन और सुधार तथा नये कामों को शुरू करने में पूरी तरह भाग ले सकें।

ग्राम आधारित औद्योगिक परियोजनायें ग्रामीण संस्कृति, कारीगरी तथा साधनों से जुड़ी होनी चाहिए। ग्रामीण विकास के उद्देश्य वाली ग्रामीण उद्योग संबंधी परियोजनाओं का आधार विज्ञान, आवश्यकता, जनसामान्य और संस्कृति होना चाहिए। इसका अर्थ है विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी का उपयोग एकदम आरंभिक स्तर पर करना चाहिए ताकि लोगों को जीवन की बुनियादी आवश्यकताएं मिल सकें। इससे आम लोगों का विज्ञान में विश्वास बढ़ेगा और उनका सहयोग मिलेगा। फलस्वरूप प्रभाव बहुमुखी होगा। स्थानीय कच्चे माल, मानव-शक्ति, उद्यमी प्रवृत्ति, कारीगरी और उत्पादनों के उपभोग को प्रभावित करने वाले सभी कारकों के मूल्यांकन के लिये लागत-लाभ तथा व्यावहारिकता का अध्ययन होना चाहिये।

पिछले दो-तीन दशकों में औद्योगीकरण ने समाज को स्पष्ट रूप से दो वर्गों—धनी और गरीब में विभक्त कर दिया है। इस प्रक्रिया से समाज 10 प्रतिशत धनिकों और 90 प्रतिशत गरीबों में बंट गया है। रोजगार के अधिक अवसर पैदा करना और सामान्य उपभोक्ता वस्तुओं के उत्पादन के लिये उत्पादन की छोटी-छोटी इकाइयों को ग्रामीण क्षेत्रों में लगाना देश की वास्तविक जरूरत है। स्थानीय रूप से उपलब्ध कच्चे माल का इस्तेमाल करने के लिए कम खर्च वाली वैकल्पिक प्रौद्योगिकी विकसित करने के लिये इंजीनियरी और विज्ञान के ज्ञान का उपयोग किया जाना आवश्यक है।

ग्रामीण क्षेत्रों में नई प्रौद्योगिकी को ग्राह्य बनाने तथा उचित वातावरण तैयार करने के लिए एक बहुत अच्छी आर्थिक पकड़ वाली योजना से शुरुआत होनी चाहिये। इससे भागीदारों को सुनिश्चित मजदूरी, रोजगार, अतिरिक्त आमदनी तथा सहयोगी धंधा मिल सकेगा। देश के विभिन्न क्षेत्रों की भिन्न-भिन्न आवश्यकताओं के अनुसार चयनात्मक विधि अपनाने की जरूरत है। स्थानीय लोगों पर व्यापक प्रभाव के लिये सही किस्म की परियोजना सही स्थान पर लगनी चाहिए। इससे स्थानीय लोगों में और नई प्रौद्योगीकियों को बढ़ावा देने वालों में अपनी योग्यता के बारे में आत्म-विश्वास बढ़ेगा। ❑

भारत में बढ़ती बेरोजगारी : कारण, समस्याएं और समाधान

डा. गणेश कुमार पाठक *

किसी भी देश में बेरोजगारी की समस्या एक अभिशाप होती है, क्योंकि इससे विकास की गति मंद पड़ जाती है, दूसरी ओर यदि रोजगार के अवसरों में वृद्धि होती है तो अर्थ-व्यवस्था में सुधार होता है। इस तरह बेरोजगारी से देश का आर्थिक विकास अवरुद्ध होता है।

बेरोजगारी के प्रकार

भारत में बेरोजगारी का अलग-अलग स्वरूप देखने को मिलता है, जिसे बेरोजगारी के प्रकार भी कह सकते हैं जो इन रूपों में होती है :

संरचनात्मक बेरोजगारी : जब देश में पूंजी के साधन सीमित होते हैं और काम चाहने वालों की संख्या निरंतर बढ़ती जाती है तो बहुत-से लोगों को रोजगार नहीं मिल पाता है। ऐसी बेरोजगारी को ही संरचनात्मक बेरोजगारी कहा जाता है। भारत में बेरोजगारी का यही स्वरूप देखने को मिलता है।

प्रच्छन्न बेरोजगारी : किसी कार्य में आवश्यकता से अधिक व्यक्ति लगे होते हैं तो उसे प्रच्छन्न बेरोजगारी कहा जाता है। बेरोजगारी का यह स्वरूप प्रत्यक्ष रूप से दिखाई नहीं देता, जैसे भारत में कृषि कार्य में इस तरह की बेरोजगारी पाई जाती है। यदि कृषि कार्य में लगे कुछ लोगों को हटा दिया जाए तो भी उत्पादन में कोई अंतर नहीं पड़ेगा। ऐसे व्यक्ति ही प्रच्छन्न बेरोजगारी के अंतर्गत आते हैं।

अल्प रोजगार : जब किसी व्यक्ति को अपनी क्षमता से कम काम मिल पाता है तो उसे अल्प रोजगार कहा जाता है। जैसे यदि एक इंजीनियरिंग की डिग्री प्राप्त व्यक्ति लिपिक या श्रमिक का कार्य करता है, तो वह अल्प रोजगार की श्रेणी में आता है।

मौसमी बेरोजगारी : जब किसी विशेष अवधि में रोजगार मिले और बाद में व्यक्ति बेरोजगार हो तो उसे मौसमी बेरोजगारी कहते हैं। कृषि आदि कार्यों में फसल बोने और काटने के समय रोजगार मिल पाता है इसलिए गांवों में मौसमी बेरोजगारी रहती है।

*भूगोल विभाग, पी.जी. कालेज दूबेछपरा, बलिया, उ.प्र.

शिक्षित बेरोजगारी : जब शिक्षित व्यक्तियों को काम नहीं मिलता है तो वह शिक्षित बेरोजगारी का ही एक रूप है। शिक्षित बेरोजगारी में भी कुछ लोग अल्प रोजगार की स्थिति में होते हैं जिन्हें रोजगार तो प्राप्त है, किंतु वह रोजगार उनकी शिक्षा के अनुरूप नहीं है। अपने देश में इस तरह की बेरोजगारी काफी अधिक देखने को मिलती है।

भारत में बेरोजगारी की स्थिति

भारत में बेरोजगारी की स्थिति का सही-सही अनुमान लगाना कठिन है, कारण कि यहां विश्वसनीय आंकड़ों का अभाव है। देश में बेरोजगारी की दर में निरंतर वृद्धि हो रही है। सन् 1957 में बेरोजगारी की दर मात्र 0.21 प्रतिशत थी जो 1969 में बढ़ कर 2.50 प्रतिशत हो गई। इसके बाद इसमें तीव्र गति से वृद्धि हुई है और 1985 में वृद्धि दर बढ़ कर 4.54 प्रतिशत हो गई और 1992 तक यह वृद्धि दर बढ़कर 5.33 प्रतिशत तक पहुंच गई। इसके बाद इसमें थोड़ी धीमी प्रगति हुई और आठवीं योजना में सन् 1995 में यह वृद्धि दर 5.51 प्रतिशत रही।

अपने देश में शिक्षित बेरोजगारी भी कम नहीं है। शिक्षित बेरोजगारी में हाई स्कूल तथा उससे ऊपर के डिग्रीधारी शिक्षितों को ही सम्मिलित किया जाता है। शैक्षिक बेरोजगारों की वास्तविक संख्या का पता लगाना भी बहुत मुश्किल है क्योंकि रोजगार कार्यालयों में सभी शिक्षित पंजीकरण नहीं कराते हैं। जून 1989 तक देश में 57,865 इंजीनियर (स्नातक एवं स्नातकोत्तर) बेरोजगार थे। 1989 में 327.76 लाख बेकार रोजगार दफ्तरों में पंजीकृत थे, जिनमें से 13 लाख 38 हजार से अधिक हाई स्कूल से नीचे के स्तर, 15.86 लाख से अधिक हाई स्कूल तथा स्नातक के मध्य और 3.22 लाख से अधिक स्नातक बेरोजगार थे। रोजगार कार्यालयों के अनुसार नौकरी चाहने वालों की संख्या जहां दिसंबर 1985 में 197.53 लाख थी, वहीं 1991 में यह संख्या बढ़ कर 344 लाख हो गई। केंद्रीय श्रम मंत्रालय के आंकड़ों के अनुसार सन् 1992 में देश में बेरोजगारों की अनुमानित संख्या 2 करोड़ 30 लाख थी जिसमें अगले 10 वर्षों में (सन् 2002 तक) 9 करोड़ 40 लाख हो जाने की संभावना है।

रोजगार दफ्तरों के अनुसार अपने देश में शिक्षित बेरोजगारों की ताजा स्थिति इस प्रकार है:

तालिका-1

भारत में शैक्षिक बेरोजगारी

शैक्षिक बेरोजगार लोगों की श्रेणियां	वास्तविक संख्या (लाख में)
हाईस्कूल से अधिक, किंतु स्नातक स्तर से कम	76.77
स्नातक एवं स्नातकोत्तर बेरोजगार	15.67
व्यावसायिक, तकनीकी, प्रशासनिक एवं प्रबंधकीय बेरोजगार	9.86
कुल योग	102.30

उपर्युक्त तालिका-1 से स्पष्ट है कि भारत में न केवल कम पढ़े-लिखे लोग बल्कि हाईस्कूल से अधिक पढ़े, इंटर, स्नातक एवं स्नातकोत्तर तथा यहां तक कि व्यावसायिक, तकनीकी, प्रशासनिक एवं प्रबंधकीय शिक्षा प्राप्त लोग (इंजीनियर, डाक्टर आदि) भी पर्याप्त संख्या में बेरोजगारी की मार झेल रहे हैं, जिसका परिणाम हो रहा है देश से बौद्धिक पलायन।

भारत में विभिन्न वर्षों में रोजगार कार्यालयों, रोजगार के लिए पंजीकृत व्यक्तियों एवं रोजगार प्राप्त व्यक्तियों का विवरण तालिका-2 से स्पष्ट है :

तालिका-2

भारत में रोजगार कार्यालयों में पंजीकरण की स्थिति

वर्ष	रोजगार कार्यालयों की संख्या	रोजगार हेतु पंजीकृत व्यक्तियों की संख्या (हजार में)	रोजगार प्राप्त व्यक्तियों की संख्या (हजार में)	चालू रजिस्टर में आवेदकों की संख्या (हजार में)
1956	143	1670.0	189.9	756.5
1971	437	5129.9	507.0	5099.9
1976	517	5619.4	496.8	9784.3
1981	663	6276.9	504.1	17836.1
1982	692	5862.9	473.4	19753.0
1983	726	6755.8	485.9	21953.3
1984	745	62190.0	407.3	23546.8
1985	800	5821.5	388.5	26269.9
1986	821	5535.4	351.3	30131.2
1987	835	6011.7	334.4	30247.3
1988	840	5963.2	328.5	30050.2
1989	849	6575.8	289.2	32776.2
1990	851	6540.6	264.5	34631.8
1991	854	62353.9	253.0	36299.7
1992	860	5300.6	238.7	36758.7
1993	887	5532.7	231.4	36275.5
1994	891	5927.3	204.9	36691.5
1995	895	5858.1	214.9	36742.3
1996*	914	4584.1	173.3	37738.3

जनवरी-सितंबर, स्रोत-वार्षिक रिपोर्ट 1996-97, श्रम मंत्रालय, भारत सरकार

भारत के विभिन्न राज्यों में रोजगार कार्यालयों में पंजीकृत बेरोजगारों की संख्या एवं रोजगार प्राप्त लोगों की संख्या का विवरण तालिका-3 से स्पष्ट है :

तालिका-3

भारत के राज्यों में रोजगार कार्यालयों का कार्यनिष्पादन, 1995

राज्य/संघ शासित प्रदेश	रोजगार कार्यालयों की संख्या	रोजगार हेतु पंजीकृत व्यक्तियों की संख्या (हजार में)	अधिसूचित रिक्तियां (हजार में)	संप्रेषण (हजार में)	नियुक्तियां (हजार में)	चालू रजिस्टर में पंजीकृत (हजार में)
आंध्र प्रदेश	32	360.8	38.5	422.2	17.5	2733.0
अरुणाचल प्रदेश	01	2.3	0.1	1.0	*	8.4
असम	53	188.0	7.3	64.9	2.5	1246.8
बिहार	66	477.7	21.2	308.5	15.0	3738.0
गोवा	01	14.8	2.2	26.6	0.4	107.6
गुजरात	43	186.3	36.4	185.5	37.8	912.2
हरियाणा	94	215.0	21.3	19.9	8.3	697.7
हिमाचल प्रदेश	15	139.5	7.4	196.8	5.5	579.7
जम्मू और कश्मीर	14	26.0	0.3	5.5	0.2	144.4
कर्नाटक	37	354.9	29.8	187.6	12.6	1754.8
केरल	62	324.8	24.1	182.9	17.1	345.8
मध्य प्रदेश	65	488.6	23.8	99.1	13.9	2183.8
महाराष्ट्र	42	672.4	47.4	509.8	16.9	3634.0
मणिपुर	09	29.9	0.5	15.4	0.1	268.8
मेघालय	10	8.4	0.8	7.0	0.2	27.6
मिजोरम	03	9.3	1.8	17.5	0.2	45.7
नगालैंड	07	5.0	0.4	1.8	0.1	20.7
उड़ीसा	36	206.9	15.7	155.6	3.6	906.9
पंजाब	43	119.7	8.6	69.8	3.3	505.6
राजस्थान	34	157.2	18.6	141.0	8.5	803.0
सिक्किम (इस राज्य में कोई भी रोजगार कार्यालय नहीं है)						
तमिलनाडु	34	444.4	21.4	288.3	13.9	3490.5
त्रिपुरा	04	17.9	0.8	10.4	0.3	204.6
उत्तर प्रदेश	88	731.5	23.5	207.6	9.9	2514.5
पश्चिम बंगाल	74	472.1	16.4	201.1	8.6	5383.2
संघशासित प्रदेश :						
अंडमान निकोबार द्वीप समूह	01	3.9	0.9	3.6	0.6	220.2
चंडीगढ़	02	17.2	1.5	12.7	0.6	153.2
दादर और नागर हवेली	01	0.4	0.3	1.7	*	4.6
दिल्ली	20	167.5	20.0	133.3	16.9	1033.8
दमन-दीव	02	0.5	0.3	3.2	*	4.5
लक्षद्वीप	01	1.0	—	1.4	0.1	9.4
पांडिचेरी	01	13.1	1.7	17.1	0.4	151.4
योग	895	5858.2	385.7	3569.9	214.9	36742.3

50 से कम आंकड़े, स्रोत-श्रम मंत्रालय, भारत सरकार

तालिका 2 और 3 के अवलोकन से स्पष्ट है कि भारत में बेरोजगारी की समस्या विकराल है। कारण कि जिस गति से बेरोजगारों की संख्या बढ़ रही है, उस गति से रोजगार के अवसर नहीं बढ़ रहे हैं।

रोजगार की स्थिति

यद्यपि अपने देश में स्वतंत्रता-प्राप्ति से लेकर अब तक निरंतर रोजगार में वृद्धि होती रही है किंतु यह वृद्धि पर्याप्त नहीं है। सन् 1991-92 में देश की अर्थ-व्यवस्था में रोजगार के अवसरों में कुल 30 लाख की वृद्धि हुई थी, जो 1992-93 और 1993-94 तक बढ़ कर 60 लाख हो गई। सन् 1994-95 में रोजगार अवसरों में 70 लाख की वृद्धि हुई। योजना आयोग के अनुसार आठवीं योजना के पहले तीन वर्षों के दौरान 187.8 लाख अतिरिक्त रोजगार के अवसर सृजित किए जाने का अनुमान लगाया गया।

नौवीं योजना के दिशा-निर्देश पत्र में, जो 16 जनवरी 1997 को राष्ट्रीय विकास परिषद के समक्ष पेश किया गया, रोजगार की स्थिति का जिक्र करते हुए यह उल्लेख किया गया है कि 1987-88 और 1993-94 के बीच रोजगार की वार्षिक वृद्धि दर 2.03 प्रतिशत वार्षिक रही जो कि आठवीं योजना की प्रत्याशित दर 2.6 प्रतिशत से काफी कम है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 50वें चक्र के अनुसार 1987-88 में जबकि खुली बेरोजगारी की दर 3.77 प्रतिशत थी, 1993-94 में घट कर 2.56 प्रतिशत हो गई, किंतु अल्प रोजगार की दर जो 6 प्रतिशत से थोड़ी अधिक थी, लगभग इसी पर कायम रही। मात्र गोवा, केरल और तमिलनाडु में यह दर 10 प्रतिशत से भी अधिक रही किंतु स्वरोजगार में गिरावट के फलस्वरूप शहरी और ग्रामीण दोनों क्षेत्रों में आकस्मिक मजदूरी में वृद्धि हुई। आकस्मिक मजदूरी रूपी रोजगार जो 1987-88 में 31.2 प्रतिशत था, 1993-94 में बढ़कर 33.5 प्रतिशत हो गया, जबकि स्वरोजगार का अंश 53.6 प्रतिशत से घटकर 51.9 प्रतिशत पर आ गया। यही नहीं, नियमित वैतनिक रोजगार भी 15.2 प्रतिशत से घटकर 14.7 प्रतिशत हो गया।

भारत में विभिन्न वर्षों में संगठित एवं गैर-संगठित क्षेत्रों में रोजगार की स्थिति का अवलोकन करने से पता चलता है कि संगठित क्षेत्र की अपेक्षा गैर-संगठित क्षेत्र में अधिक रोजगार के अवसर सृजित हुए हैं। 1973 में संगठित क्षेत्र में कुल 180.82 लाख रोजगार थे जबकि असंगठित क्षेत्र में 2174.48 रोजगार थे जो 1991 तक बढ़कर क्रमशः 267.3 लाख और 3151.7 लाख हो गए। विभिन्न वर्षों में संगठित एवं असंगठित क्षेत्रों में रोजगार की स्थिति का विवरण तालिका-4 से स्पष्ट है।

तालिका-4

भारत में संगठित एवं गैर-संगठित क्षेत्रों में रोजगार

वर्ष	संगठित क्षेत्र में रोजगार (दस लाख में)	गैर-संगठित क्षेत्र में रोजगार (दस लाख में)	कुल रोजगार (दस लाख में)
1973	18.82	217.48	236.30
1978	21.24	249.46	270.70
1983	24.01	278.69	302.70
1988	25.71	296.29	322.0
1991	26.73	315.17	341.90

स्रोत— राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन एवं रोजगार तथा प्रशिक्षण महानिदेशालय

आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-97) की मध्यावधि समीक्षा में इस बात का उल्लेख है कि 1992-93 से 1994-95 के तीन वर्षों के दौरान 187.8 लाख रोजगार के अवसर जुटाए गए जिनमें से 90.3 लाख रोजगार (48 प्रतिशत) कृषि और संबद्ध क्रियाओं में सृजित किए गए जबकि व्यापार एवं परिवहन क्षेत्र में 33 लाख रोजगार (18 प्रतिशत) सृजित हुए थे। विनिर्माण क्षेत्र में 30 लाख रोजगार (16 प्रतिशत) सृजित किए गए थे।

1992 से 1994 के दौरान बड़े और मध्यम उद्योगों में रोजगार में वृद्धि की अपेक्षा इनमें रोजगार घट गया। इस क्षेत्र में 1992 में जहां 58.2 लाख लोग कार्यरत थे, 1994 में घटकर 56.5 लाख रह गए। आधुनिक लघु स्तर के क्षेत्र में 1992-94 के दौरान रोजगार के अवसर 129 लाख से बढ़कर 139 लाख हो गए। इस तरह इसमें 3.6 प्रतिशत की वृद्धि हुई। हस्तशिल्प उद्योगों में 1992 में 16.1 लाख लोग रोजगार में थे जो 1994 में बढ़कर 19.4 लाख हो गए। इस तरह इनमें 9.8 प्रतिशत की वृद्धि हुई। कुल मिलाकर विकेन्द्रीकृत क्षेत्र में 1992 में जो रोजगार अवसर 273 लाख थे, 1994 में बढ़कर 288 लाख हो गए और इस तरह इस दौरान रोजगार में 2.7 प्रतिशत की औसत वृद्धि हुई।

तालिका-6

भारत में विनिर्माण क्षेत्र में रोजगार, 1992-94

विनिर्माण श्रेणियां	मार्च के अंत तक (लाखों में)		1992-94 के दौरान वृद्धि दर (प्रतिशत में)
	1992	1994	
1. बड़े एवं मध्यम	58.2	56.5	-1.5
2. विकेन्द्रीकृत	272.9	288.1	2.7
(क) आधुनिक	184.8	194.4	2.6
1. लघु स्तर उद्योग	129.6	139.4	3.6
2. बिजली करघा	55.0	55.0	0.0
(ख) पारंपरिक*	88.1	93.7	3.1
3. हथकरघा	35.3	36.7	2.0
4. खादी	4.7	4.8	1.1
5. ग्राम उद्योग	12.0	12.3	1.2
6. नारियल उद्योग	1.8	1.8	0.0
7. रेशम उद्योग	18.2	18.7	1.4
8. हस्तशिल्प	16.1	19.4	9.8

नोट: पारंपरिक क्षेत्र में अधिकतर श्रमिक अंशकालिक हैं और इस प्रकार तीन रोजगार प्राप्त श्रमिकों को एक पूर्णकालिक श्रमिक के बराबर मानकर आंकड़े तैयार किए गए हैं।*

स्रोत : योजना आयोग, आठवीं योजना (1992-97) की मध्यावधि समीक्षा।

तालिका-6 से स्पष्ट है कि यदि विनिर्माण क्षेत्र में रोजगार को बढ़ाना है तो इसके लिए अधिक बल लघु स्तर के क्षेत्र पर ही देना होगा, कारण कि रोजगार की दृष्टि से बड़े और मध्यम क्षेत्र पर भरोसा करना ठीक नहीं है।

बेरोजगारी के कारण

भारत में बेरोजगारी के लिए कोई एक कारण नहीं है, बल्कि बेरोजगारी उत्पन्न करने के अनेक कारण हैं, जिनमें से प्रमुख इस प्रकार हैं :

जनसंख्या में वृद्धि: अपने देश में बेरोजगारी बढ़ाने में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका जनसंख्या वृद्धि अदा कर रही है। उल्लेखनीय है कि अपने देश में जनसंख्या वृद्धि दर 2.1 प्रतिशत वार्षिक है, जबकि रोजगार वृद्धि दर उससे काफी कम है।

दोषपूर्ण शिक्षा पद्धति: भारत में ऐसी शिक्षा पद्धति लागू है, जो मात्र लिपिक बनाने का कार्य करती है, जबकि शिक्षा व्यवसायपरक होनी चाहिए। इस तरह भारत में शैक्षिक बेरोजगारी का एक कारण दोषपूर्ण शिक्षा व्यवस्था भी है।

कुटीर उद्योगों का ह्रास: स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात जहां एक तरफ बड़े उद्योगों का तीव्र गति से विकास हुआ है, वहीं दूसरी तरफ कुटीर और हस्तशिल्प की तरफ पूरा ध्यान नहीं दिया गया। फलत: इन कुटीर और हस्तशिल्प में लगे कारीगर बेकार हो गए, जिससे बेरोजगारी में वृद्धि हुई। इन कार्यों में मशीनों के बढ़ते प्रयोग ने भी अनेक कारीगरों की छुट्टी कर दी जिससे बेरोजगारी को बढ़ावा मिला।

पूंजी निर्माण की धीमी गति: भारत में पूंजी निर्माण की गति काफी धीमी रही है, जिसके चलते उद्योगों, व्यवसायों और सेवा कार्यों का विस्तार भी मंद गति से ही हुआ है। इसके विपरीत जनसंख्या में तीव्र वृद्धि के कारण रोजगार अवसरों की गति उस गति से नहीं बढ़ी, जैसी कि बढ़नी चाहिए थी।

मशीनीकरण एवं आधुनिक तकनीक का विकास: चूंकि भारत एक विकासशील देश है जो विकास के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए मशीनों और आधुनिक तकनीक पर विशेष बल दे रहा है। यंत्रीकरण की गति उद्योगों सहित कृषि में भी बढ़ी है जिसके चलते काफी लोग इन कार्यों में नहीं लग पा रहे हैं, जिससे बेरोजगारी में वृद्धि हो रही है।

दोषपूर्ण दृष्टिकोण: अपने देश में बेरोजगारी का एक मुख्य कारण शिक्षित लोगों द्वारा नौकरी की चाह भी है। यहां के शिक्षित युवक चपरासी या लिपिक बनना पसंद करते हैं किंतु स्वयं कोई उत्पादन कार्य (स्वरोजगार) प्रारंभ नहीं कर सकते। यह दृष्टिकोण भी शैक्षिक बेरोजगारी को बढ़ावा देता है।

कृषि से पलायन: भारत के पढ़े-लिखे युवक कृषि कार्य से दूर भागते जा रहे हैं, जबकि कृषि कार्य में रोजगार की पर्याप्त संभावनाएं विद्यमान हैं। जिन युवकों के पास अपना खेत है, वे भी खेती न करके नौकरी ही चाहते हैं जिससे बेरोजगारी बढ़ रही है।

उत्पादकता एवं मजदूरी में भिन्नता: भारत में योजनाबद्ध विकास के चलते मुद्रा प्रसार कायम है जिससे मूल्य वृद्धि हो रही है। इसके प्रभाव से श्रमिकों की मांग पर श्रमिकों का वेतन भत्ता बढ़ा दिया जाता है जिससे वस्तुओं की लागत मूल्य में वृद्धि हो जाती है, जबकि वस्तुओं की मांग घट जाती है। फलत: उत्पादन कम करना पड़ता है, जिससे बेरोजगारी में वृद्धि होती है।

बेरोजगारी से उत्पन्न समस्याएं

भारत में बेरोजगारी की समस्या दिन-प्रतिदिन विकराल रूप धारण कर रही है। सन् 1956 एवं 1990 के दौरान रोजगार प्राप्त करने वालों की संख्या दुगुनी हो गई है और उसके बाद तो इसमें और वृद्धि ही हुई है। इन बेरोजगारों में से 57 प्रतिशत शिक्षित बेरोजगार हैं और प्रत्येक सात बेरोजगारों में एक महिला बेरोजगार है। अपने देश में बेरोजगार के चलते ये समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं :

मानव-शक्ति का व्यर्थ जाना: बेरोजगारी के चलते मानव-शक्ति का समुचित उपयोग नहीं हो पाता है जिससे मानव-शक्ति व्यर्थ चली जाती है। यदि इस बेकार जा रही मानव शक्ति का समुचित उपयोग किया जाता तो देश की उत्पादकता में वृद्धि होती और देश समृद्ध होता।

सामाजिक समस्याओं की उत्पत्ति: एक कहावत है कि खाली मस्तिष्क शैतान का घर होता है और बेरोजगार व्यक्ति का मस्तिष्क भी खाली ही रहता है। इससे अनेक सामाजिक समस्याएं यथा—चोरी, डकैती, बेईमानी, अनैतिकता, व्यभिचार, अनाचार, दुराचार, बलात्कार, शराबखोरी, जुएबाजी आदि जन्म ले रही हैं, जिनके चलते सामाजिक सुरक्षा खतरे में पड़ गई है। इसमें कानून और व्यवस्था की समस्या उत्पन्न होकर किसी भी सरकार के लिए संकट पैदा कर सकती है। शांति एवं सुरक्षा को कायम रखने तथा व्यवस्था बनाए रखने के लिए सरकार को काफी व्यय करना पड़ रहा है जिससे राष्ट्रीय क्षति हो रही है।

आर्थिक सम्पन्नता में ह्रास: बेरोजगारी के चलते प्रति व्यक्ति आय में गिरावट आती है जिसके प्रभाव से हमारा जीवन स्तर भी गिरता है। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु लोग ऋणग्रस्तता और निर्धनता के जाल में फंसते जाते हैं जिससे उनकी आर्थिक समस्याएं निरंतर बढ़ती जाती हैं।

अन्य समस्याएं

बेरोजगारी के चलते अन्य समस्याएं यथा—औद्योगिक संघर्षों में वृद्धि, मालिकों द्वारा बेरोजगारी का लाभ उठाकर कम मजदूरी देना तथा भरपेट भोजन न मिलने के कारण मृत्यु दर में वृद्धि आदि भी देखने को मिलती हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि बेरोजगारी के कारण सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं तथा इससे वातावरण दूषित हो जाता है। संभवत: इसीलिए विलियम बेवरिज ने लिखा है कि "बेरोजगार रखने के स्थान पर लोगों को गड्ढे खुदवाकर वापस भरने के लिए नियुक्त करना अधिक अच्छा है।"

बेरोजगारी दूर करने के उपाय

भारत में शैक्षिक बेरोजगारी दूर करने हेतु योजनाबद्ध तरीके से प्रयास करने की आवश्यकता है। बेरोजगारी दूर करने के लिए इन उपायों और सुझावों को अपनाया जा सकता है :

जनसंख्या वृद्धि पर नियंत्रण: बेरोजगारी दूर करने हेतु जनसंख्या वृद्धि को रोकना सबसे आवश्यक है क्योंकि यदि जनसंख्या वृद्धि नहीं होगी तो बेरोजगार भी नहीं बढ़ेंगे।

शिक्षा प्रणाली में सुधार: बेरोजगारी पैदा करने वाली शिक्षा प्रणाली में सुधार कर शिक्षा को रोजगारपरक बनाना नितांत आवश्यक है, जिसके लिए व्यावसायिक शिक्षा का विस्तार किया जाना चाहिए। यह व्यवस्था प्राथमिक स्तर से ही लागू करनी होगी ताकि प्रत्येक बच्चा कम-से-कम अपने भरण-पोषण भर उत्पादन कार्य कर सके।

लघु उद्योगों और कुटीर उद्योगों को बढ़ावा: आज पुन: आवश्यक हो गया है कि लघु उद्योगों और कुटीर उद्योगों के विकास को प्रोत्साहित किया जाए ताकि कम पूंजी विनियोग पर अधिक व्यक्तियों को रोजगार के अवसर प्राप्त हो सकें। खासतौर पर श्रम-प्रधान कुटीर उद्योगों का विकास करना आवश्यक है, जिसमें अधिक से अधिक रोजगार मिले।

कृषि की तरफ उन्मुखता: आज आवश्यकता इस बात की है कि युवकों का रुझान कृषि कार्य की तरफ बढ़ाया जाए। आज का युवक सिर्फ नौकरी चाहता है जबकि कृषि कार्य में रोजगार के पर्याप्त अवसर हैं। खासतौर पर जिन युवकों के पास अपने खेत हैं, उन्हें चाहिए कि नौकरी का मोह छोड़कर योजनाबद्ध ढंग से कृषि करें।

कृषि आधारित उद्योग-धंधों का विकास: अपने देश में प्रच्छन्न बेरोजगारी और मौसमी बेरोजगारी की अधिकता है। कृषि में सहायक उद्योग-धंधों का विकास कर इस तरह की बेरोजगारी को दूर किया जा सकता है। खासतौर से कृषि के साथ-साथ पशुपालन, मुर्गीपालन, बागवानी, दुग्ध व्यवसाय, मत्स्य पालन आदि उद्योग-धंधों का विकास करना लाभदायक सिद्ध हो सकता है।

प्राकृतिक संसाधनों का सर्वेक्षण: प्राकृतिक संसाधनों का सर्वेक्षण करके इस बात का पता लगाया जा सकता है कि नये संसाधनों पर कौन-से उद्योग-धंधे स्थापित किए जाएं। इन उद्योग-धंधों में रोजगार के अवसर उपलब्ध हो सकते हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगारपरक नियोजन: ग्रामीण क्षेत्रों के लिए ऐसी रोजगारपरक नियोजन नीति बनाई जानी चाहिए जिससे डाक्टरों, कंपाउंडरों, कारीगरों, अध्यापकों, छोटे उद्योगपतियों आदि उच्च शिक्षा प्राप्त लोगों को भी रोजगार के अवसर प्राप्त हो सकें। गांवों में ऐसी अनेक संभावनाएं विद्यमान हैं, बस उनको कार्य रूप देने की आवश्यकता है।

पूर्ण क्षमता का उपयोग: अपने देश में अनेक उद्योग ऐसे हैं जो अपनी पूर्ण क्षमता का उपयोग नहीं कर पा रहे हैं और क्षमता से कम उत्पादन कर रहे हैं। अत: आवश्यकता इस बात की है कि ऐसे उद्योगों को अपनी पूर्ण क्षमता प्राप्त करने हेतु प्रोत्साहित किया जाना चाहिए ताकि इन उद्योगों में रोजगार के अवसर बढ़ सकें।

विनियोग दर में वृद्धि: रोजगार सुविधाओं में वृद्धि के लिए घरेलू बचतों को प्रोत्साहित किया जाना आवश्यक है ताकि पूंजी निर्माण ऊंची दर से किया जा सके और विनियोग दर में वृद्धि हो सके। ऐसा करने से नये-नये उद्योगों की स्थापना में मदद मिलेगी और रोजगार अवसरों में भी वृद्धि होगी।

ग्रामीण विद्युतीकरण: भगवती समिति द्वारा प्रस्तुत सुझावों के अनुसार ग्रामीण बेरोजगारी दूर करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में विद्युतीकरण किया जाए जिससे ग्रामीण क्षेत्रों में छोटे-छोटे उद्योग-धंधों का विकास हो सके।

उपरोक्त उपायों और सुझावों के अतिरिक्त बेरोजगारी दूर करने में सड़क निर्माण करना, ग्रामीण मकान बनाने के लिए सुविधाएं देना, छोटी सिंचाई सुविधाओं का विस्तार किया जाना और कृषि सेवा केन्द्रों की स्थापना करना भी सहायक हो सकता है।

राष्ट्रीय श्रम आयोग द्वारा भी देश में बेकारी एवं अर्द्ध-बेकारी की समस्या को दूर करने हेतु निम्नांकित सुझाव प्रस्तुत किए गए :

- रोजगार की राष्ट्रीय नीति निश्चित करना।
- अखिल भारतीय मानव-शक्ति सेवा का गठन करना।
- शिक्षा पद्धति में परिवर्तन।
- औद्योगिक सेवाओं को सुदृढ़ बनाना।
- प्रत्येक सामुदायिक विकास खंड में कम-से-कम एक रोजगार कार्यालय खोलना।

यदि इन उपायों और सुझावों की समीक्षा की जाए तो यह निष्कर्ष सामने आता है कि अपने देश में बेरोजगारी दूर करने हेतु सबसे पहले कृषि पर ही बल देना होगा क्योंकि रोजगार का सबसे अधिक भाग कृषि क्षेत्र में ही उत्पन्न होता है।

इसके बावजूद यदि सन् 2002 तक पूर्ण रोजगार का लक्ष्य प्राप्त करना है तो रोजगार की वार्षिक वृद्धि दर 2.1 प्रतिशत करनी होगी जबकि वर्तमान में यह वृद्धि दर मात्र 1.76 प्रतिशत वार्षिक ही है। साथ ही साथ यह भी सत्य है कि जब तक देश को पूर्ण रोजगार का लक्ष्य प्राप्त नहीं हो जाएगा, तब तक भारत गरीबी के जाल में उलझा ही रहेगा। ❑

(पृष्ठ 10 का शेष)

ग्रामीण विकास में जन-संचार माध्यमों का योगदान

सकती है। स्थानीय रेडियो स्टेशनों पर उन स्थानों के लोगों की जरूरतों के अनुसार स्थानीय लोगों से उनकी सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के अनुरूप कार्यक्रम प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

लेकिन रेडियो और दूरदर्शन की अपनी सीमाएं हैं। पूरी निष्ठा और सही इरादों के बावजूद प्रसारण की विविधता मुख्यत: इकतरफा है। रेडियो-दूरदर्शन जानकारी दे सकते हैं, परंतु इस जानकारी पर लोगों की प्रतिक्रिया क्या है, यह जानना यदि असंभव नहीं तो मुश्किल जरूर होता है।

निष्कर्ष

यदि राज्य सरकारों, सामुदायिक विकास केंद्रों, पंचायती राज संस्थाओं और कृषि संगठनों की मार्फत इनके कर्मचारियों से संपर्क कायम करके ग्रामीण जनता का फीड-बैक प्राप्त कर सके और मीडिया अपनी भूमिका में इस फीड-बैक के अनुसार निरंतर तब्दीली ला सके, तो निश्चित रूप से जन-संचार माध्यम गांवों के कायाकल्प का सशक्त साधन बन सकेंगे और उनमें खुशहाली लाकर गांवों को स्वर्ग बनाने के महात्मा गांधी के स्वप्न को साकार करने में सहायक सिद्ध होंगे। ❑

ग्रामीण विकास में संचार माध्यमों की भूमिका

ममता भारती

तेजी से बढ़ते शहरीकरण और उससे जुड़े औद्योगिकीकरण के बावजूद अपने भारत की 74 प्रतिशत जनसंख्या आज भी गांवों में ही रहती है। ऐसे करोड़ों गांववासियों का आर्थिक तथा सामाजिक विकास बहुत हद तक संचार के साधनों पर भी निर्भर करता है, जिनसे ग्रामीणों को वंचित रखने का सीधा मतलब है कि विकास की गति धीमी रखना। गांवों में आज भी सही जानकारी का अभाव दिखाई देता है। अत: शिक्षा, विज्ञान और प्रौद्योगिकी की बातें पिछड़े ग्रामीण इलाकों में आज भी अधिकांश लोगों की समझ से परे हैं।

संचार क्रांति के दौर में यद्यपि यह बात बड़ी अजीब लगती हैं। लेकिन यह एक कटु सत्य है कि हमारी सोच और प्रयासों का केन्द्र हमारे नगर बन गए हैं, किंतु भारत भर के करीब 2,000 शहर ही तो संपूर्ण भारत की तसवीर नहीं हो सकते। हमारे देश में करीब पांच लाख गांव हैं, जिनमें से करीब 45,000 गांव ही ऐसे हैं जो नगरों के नजदीक हैं और विकास के सारे प्रयास प्राय: वहीं पूरे नहीं हो जाते। सुदूर क्षेत्रों के पर्वतीय इलाकों में और खासकर जनजातीय क्षेत्रों में या जहां आदिवासी रहते हैं, वहां आज भी पाषाण युग की परंपराएं और प्रथाएं प्रचलित हैं जो कि हमारी उपलब्धियों की जटिलता साबित करती हैं। ग्रामोन्मुखी पत्रकारिता तथा संचार माध्यम हमारे ग्रामीण क्षेत्रों की प्रगति की तसवीर को पूरा कर सकते हैं।

प्राय: यह देखा गया है कि ग्रामीण क्षेत्रों के मुद्दे राष्ट्रीय प्रेस में हैडलाइन नहीं बन पाते क्योंकि ग्रामीण इलाकों में प्रमुख समाचार-पत्रों की पहुंच काफी कम है। पूरे देश में एकमात्र केरल ही इसका अपवाद है, जहां आधी से अधिक आबादी प्रेस की पहुंच में रहती है। केरल हमारे देश का ऐसा राज्य है, जहां सर्वाधिक साक्षरता है। इसीलिए वहां के देहाती इलाकों में अखबारों की पहुंच भी अधिक है। भारतीय ग्रामीण सर्वेक्षण (आई.आर.एस.-95) के अनुसार देश भर में ग्रामीण क्षेत्रों के अंतर्गत प्रेस की पहुंच का औसत मात्र 13 प्रतिशत है। केरल, तमिलनाडु, पंजाब तथा महाराष्ट्र में यह औसत क्रमश: 52, 24, 21 तथा 19 प्रतिशत है जबकि टी.वी., रेडियो तथा सिनेमा जैसे संचार माध्यमों की पहुंच भारतीय गांवों में क्रमश: 32, 21 तथा 13 प्रतिशत है। मीडिया रिसर्च यूजर्स कौंसिल (मर्क) के लिए आपरेशन्स रिसर्च ग्रुप द्वारा इस संबंध में एक अध्ययन दो वर्ष पूर्व किया गया था जिसमें 45,000 से भी अधिक विभिन्न उत्तर-दाताओं से नमूना सर्वेक्षण के परिणाम प्राप्त हुए थे। इस रिपोर्ट के आंकड़े बताते हैं कि ग्रामीण क्षेत्रों में *दैनिक मलयालम मनोरमा, मातृभूमि, दैनिक जागरण, दैनिक थांथी* तथा *इनेडू* की पहुंच अच्छी है तथा पत्रिकाओं में *मलयालम मनोरमा, मंगलम, बलराम, वनिता* तथा *मनोहर कहानियां* अग्रणी हैं।

राजस्थान पत्रिका, मध्य प्रदेश से प्रकाशित *नई दुनिया* तथा उत्तर प्रदेश में वाराणसी सहित नौ स्थानों से छपने वाला दैनिक *आज* उन अखबारों में प्रमुख है, जो गांव के संबंध में नियमित स्तंभ तथा परिशिष्ट प्रति सप्ताह छापते हैं। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त एक पाक्षिक पत्रिका *सेवाग्राम* है जो लखनऊ से प्रकाशित होती है। उसमें ग्रामीण विकास से संबंधित विभिन्न सामग्री का नियमित रूप से प्रकाशन किया जाता है। ऐसा ही एक साप्ताहिक पत्र है *अक्षर भारत,* जो हिन्दी के अतिरिक्त अन्य कई भाषाओं में भी निकलता है। इसका प्रकाशन भी ग्रामीण पृष्ठभूमि से संबंधित प्राथमिकताओं को लेकर शुरू किया गया था। ग्रामीण क्षेत्रों में व्याप्त निरक्षरता की समस्या समाप्त करने की दिशा में यह एक सार्थक प्रयास सिद्ध हो सकता है, किंतु इस पत्र को अपेक्षित दिशा और सहयोग नहीं मिला। ग्रामीण पत्रकारिता की कहानी कुछ इस प्रकार रही है कि अनेक पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित हुईं, कुछ समय चलीं और उन्हें बंद होना पड़ा। हमारे देश में गांवों के विकासार्थ कल्याणकारी कार्यक्रमों तथा विभिन्न प्रकार की योजनाओं में विपुल धनराशि खर्च की जाती है लेकिन ग्रामोन्मुखी-पत्रकारिता आज भी उपेक्षित है। भारतीय जन संचार संस्थान ने हिंदी पत्रकारों के लिए सन् 1981 में पुनश्चर्या पाठ्यक्रम शुरू किया था और ऐसे सार्थक प्रयासों की आज भी आवश्यकता महसूस होती है।

कुरुक्षेत्र ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय की एक मासिक पत्रिका है जो पिछले 45 वर्षों से निरंतर निकाली जा रही है। भारत सरकार का प्रकाशन विभाग इसे हिंदी तथा अंग्रेजी भाषाओं में प्रकाशित करता है। इसमें ग्रामीण विकास से संबंधित योजनाओं आदि की जानकारी होती है लेकिन यह पत्रिका चूंकि सरकारी है, अत: इसकी अपनी सीमाएं और मर्यादाएं हैं। पर्याप्त प्रसार संख्या वाली यह पत्रिका ग्रामीणों में लोकप्रिय है और प्रेरक तथा उपयोगी जानकारी भरा संदेश पहुंचा रही है। इसके अतिरिक्त दो अन्य मासिक पत्रिकाएं भी हैं जो कृषि भवन स्थित ग्रामीण विकास विभाग से निकलती हैं। ये पत्रिकाएं नि:शुल्क हैं तथा इनका नाम है— *ग्रामीण विकास समाचार* (हिन्दी) तथा *रूरल डेवलेपमेंट न्यूज* (अंग्रेजी)।

चुनौतियां

गांव तथा कृषि के क्षेत्र में पचास वर्षों की हमारी जो भी उपलब्धियां रही हैं, वह चीन और जापान की तुलना में बहुत कम हैं। अत: इस दिशा में विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है ताकि ग्रामीण खुद सक्रिय तथा जागरूक होकर अपने विकास के लिए सचेष्ट रहें। हमारे संचार माध्यम यह कार्य करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। ग्रामीण पत्रकारिता को बढ़ावा देने के उद्देश्य से प्रतिवर्ष स्टैट्समैन प्रकाशन समूह (कलकत्ता) रूरल मीडिया एवार्ड देकर उन पत्रकारों को पुरस्कृत करता है, जिन्होंने ग्रामीण क्षेत्रों से संबंधित समस्याओं पर आधारित रिपोर्ट, फीचर या लेखों आदि द्वारा उत्कृष्ट योगदान दिया हो। देश की सभी राज्य सरकारों को इस दिशा में अविलंब कदम उठाने चाहिए ताकि ग्रामीण पत्रकारों को नई गति और दिशा प्राप्त हो, उन्हें प्रोत्साहन और अवसर मिल सके। लेकिन इसे विडंबना ही कहा जाएगा कि आजादी के पचास वर्ष बाद हमारे देश में ग्रामोन्मुखी पत्रकारिता आज भी अपने स्थान पर खड़ी सिर्फ कदमताल कर रही है। यद्यपि कहा जाता है कि हमारे देश की आत्मा गांवों में बसती है और हमारे गांव आज कष्टों के पर्याय हैं। फलत: ग्रामोन्मुखी पत्रकारिता कष्टों का अंधेरा कम जरूर कर सकती है।

हमारे अनुसंधान केन्द्रों की उपलब्धियां तब तक अधूरी हैं जब तक वे गांव तक पहुंच कर ग्रामीणों के जीवन को बेहतर बनाने में योगदान नहीं करतीं। जब तक ग्रामीणों के काम करने और सोचने का ढंग वैज्ञानिक नहीं होगा, तब तक हम विकसित राष्ट्रों की बराबरी करने की बात सोच भी नहीं सकते। ऐसी तमाम बातें हमारे संचार माध्यम बहुत आसानी से ग्रामीणों तक पहुंचा सकते हैं। इन सब चुनौतियों को देखते हुए कहा जा सकता है कि ग्रामीण पत्रकारिता का क्षेत्र बाधाओं से रहित नहीं है। फिर भी ग्रामीण पत्रकारों को सन्नाटा तोड़ना होगा क्योंकि यह सच है कि मीडिया चाहे वह इलैक्ट्रानिक हो या प्रिंट, जन-मानस पर उसका प्रभाव पड़ता ही है। विशेषकर प्रिंट मीडिया अपने पाठकों का समाचारों के साथ विचारों का सीधा संप्रेषण भी करता है। अत: इसे महत्वपूर्ण कहा जा सकता है। गांवों में व्याप्त पिछड़ेपन के अंधेरे को दूर करने के लिए संचार माध्यमों का इस्तेमाल अभी आधा-अधूरा ही हुआ है। यह सच है कि संचार माध्यमों ने पूरे समाज के लिए बहुत कुछ किया है लेकिन उसकी उपलब्धियां ग्रामीण क्षेत्रों में पहुंच की दृष्टि से कम हैं, जिन्हें आगे बढ़ाने की जरूरत है।

संभावनाएं

कर्मठ, जिज्ञासु और रचनात्मक दृष्टि वाले पत्रकारों को ग्राम्य अंचलों की स्थिति को बेहतर बनाने के लिए सार्थक प्रयास करने चाहिए। यह सच है कि ग्रामीण पत्रकारिता से परोक्ष रूप से जुड़े लोगों में अधिकांश की आजीविका साधन कुछ और होता है। वे पत्रकारिता का कार्य गौण रूप में करते हैं, लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में व्याप्त अशिक्षा, गरीबी, बेकारी, अधिक आबादी, अंधविश्वास, मुकदमेबाजी तथा गुटबंदी जैसी जटिल समस्याएं विद्यमान हैं, जिन्हें दूर करने के सारे सरकारी प्रयास अभी तक पूर्णरूपेण सफल नहीं हो सके हैं। ग्रामीण पत्रकार यदि स्वयं चाहें तो अपने-अपने क्षेत्रों में नव-चेतना और जागृति का संचार कर सकते हैं क्योंकि केवल अंधकार को कोसने से तो कुछ होने वाला नहीं है। आवश्यकता इस बात की है कि तुरंत कोई पहल कर, दीप जलाया जाए। वैसे भी आजकल हमारे देश में गांवों के समग्र विकास हेतु देश में अनेक योजनाएं चल रही हैं। ऋण और अनुदान के रूप में मुख्यत: निर्बल वर्ग को सहायता दी जाती है। इसके अतिरिक्त पिछड़े इलाकों में स्वयंसेवी संस्थानों के माध्यम से भी प्रतिवर्ष पर्याप्त धनराशि खर्च की जाती है। लेकिन सब कुछ इतने गुपचुप तरीके से होता है कि वास्तविक लाभार्थी छूट जाते हैं और सरकारी धन की व्यय पूर्ति हो जाती है। अत: इन सबका खुलासा भी होना चाहिए। ग्रामीण विकास कार्यों में पारदर्शिता होने से भ्रष्टाचार मिटेगा तथा गांवों और ग्रामीणों का ज्यादा भला होगा। इस कार्य में ग्रामीण पत्रकार सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। लोक कार्यक्रम एवं ग्रामीण प्रौद्योगिकी तथा विकास परिषद (कपार्ट), राष्ट्रीय विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी संचार परिषद और केन्द्र तथा राज्य सरकारों के समाज कल्याण बोर्डों आदि को चाहिए कि गांवों में चल रही अपनी परियोजनाओं के बारे में विस्तृत जानकारी का प्रकाशन तुरंत अनिवार्य बनाएं। ग्रामीण पत्रकारों को इस दिशा में सक्रिय होना पड़ेगा, ताकि भविष्य में सरकारी खजाने के सही उपयोग के साथ-साथ समय पर ही हर चुनौती का सामना किया जा सके।

सुझाव

हमारे देश में ग्रामीण पृष्ठभूमि से निकल कर अनेक प्रतिभाएं, मशहूर हस्तियां बनीं और संचार जगत के आकाश पर लंबे समय तक छाई रहीं। लेकिन राष्ट्रीय समाचार-पत्रों की अपनी मजबूरी होती है, जिसके कारण अधिकांश पत्रकारों को नगरोन्मुखी होना पड़ता है। क्षेत्रीय लघु समाचार-पत्रों का सीधा संपर्क हमारे गांवों से कहीं अधिक होता है। देश में अनेक प्रमुख समाचार-पत्रों का झुकाव अब इस ओर बढ़ रहा है और वे धीरे-धीरे क्षेत्रीय कवरेज को बढ़ा कर छोटे नगरों और कस्बों तक जा रहे हैं। हमारे देश में ग्रामीण स्तर पर कार्यरत प्रसार कार्यकर्ता, कृषि विद्यालय के छात्र और शिक्षक, कृषि तथा ग्रामीण विकास से जुड़े संचारकों को यदि संगठित और प्रशिक्षित किया जाए, तो एक बड़ा नेटवर्क ग्रामीण पत्रकारों का बन सकता है। लेकिन उससे पहले उपयोग तथा कार्य योजना से संबंधित रूपरेखा तैयार करनी होगी। राज्य सरकारों के सूचना तथा जन-संपर्क विभाग, ग्रामीण पत्रकारिता को शीघ्र बढ़ावा देने के उद्देश्य से प्रशिक्षण शिविर, सम्मेलन, संगोष्ठी तथा कार्यशालाओं का आयोजन कर सकते हैं तथा उसके प्रकाशनों में उनके विकास समाचारों, प्रेरक कथाओं तथा सफलताओं की कहानियों का उपयोग कर सकते हैं। दरअसल हमारे देश में अनेक ऐसे इलाके भी हैं जिन्हें अनेक मामलों में आदर्श और अनुकरणीय कहा जा सकता है। वहां सरकारी मदद के बिना भी बहुत अच्छा कार्य हुआ है। ग्रामीण पत्रकार अपनी लेखनी द्वारा ऐसे मामलों को उजागर कर सकते हैं ताकि एक नये ग्रामीण भारत का पुनर्निर्माण हो सके। तभी 21वीं सदी में संचार माध्यमों की सार्थकता ग्रामीण विकास के क्षेत्र में सिद्ध हो सकेगी। ❑

ग्रामीण विकास में

कृषि आधारित उद्योगों की सम्भावनाएं

डा. एस.सी. जैन*

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहां की 75 प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। कृषि आधारित उद्योग ग्रामीण विकास की योजनाओं का एक महत्वपूर्ण अंग हैं। देश में गिरती ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था को संभालने तथा कृषि में तीव्र विकास के अवरोधों को समाप्त करने के लिये कृषि पर आधारित उद्योगों के विकास, विस्तार की व्यापक संभावनाएं हैं। कृषि उद्योगों की स्थापना से कृषि उपजों को कच्चे माल के रूप में प्रयोग करके व्यापारिक स्तर पर वस्तुओं का निर्माण करने का कार्य किया जाता है। इससे आर्थिक तथा सामाजिक विकास का मार्ग प्रशस्त होता है। उत्पादों की उपयोगिता के आधार पर कृषि उद्योगों का विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है—प्रथम उपभोक्ता वस्तुओं का उत्पादन करने वाले कृषि उद्योग, द्वितीय उत्पादक वस्तुओं का निर्माण करने वाले कृषि उद्योग, तृतीय उपजों को विभिन्न प्रक्रियाओं से गुजार कर उपभोग योग्य बनाने वाले कृषि उद्योग।

देश में स्वतंत्रता के पश्चात कृषि उत्पादन में वृद्धि की दिशा में महत्वपूर्ण प्रगति हुई है। आंकड़ों से स्पष्ट होता है जहां वर्ष 1984-85 में 14.55 करोड़ टन खाद्यान्नों का उत्पादन होता था, वहीं वर्ष 1995-96 में यह लगभग 19 करोड़ टन है। कृषि क्षेत्र में इस उल्लेखनीय सफलता का श्रेय देश के कृषकों, वैज्ञानिकों तथा कृषि विस्तार कार्यकर्ताओं को जाता है। कृषि उत्पादन वृद्धि के फलस्वरूप शासकीय प्रयासों में कृषकों को उत्कृष्ट किस्म के बीज, रासायनिक उर्वरक, सिंचाई सुविधाएं उदारता से उपलब्ध कराई गईं। वर्ष 1997-98 के बजट प्रावधान में राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास हेतु 29 अरब 69 करोड़ रुपये उपलब्ध कराये गये जिसका उपयोग ग्रामीण क्षेत्रों में बुनियादी सुविधाओं के विस्तार तथा कृषि सम्बद्ध क्षेत्रों पर किया जाएगा।

कृषि के महत्व को दृष्टिगत रखते हुए सरकार ने विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में सदैव इस क्षेत्र को प्राथमिकता प्रदान की है। आठवीं पंचवर्षीय योजना में कृषि तथा सम्बद्ध क्षेत्रों पर कुल 22,462 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया था।

ग्रामीण विकास में कृषि उद्योग

अर्थ-व्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों के साथ ग्रामीण विकास प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ है। भारत में अभी ग्रामीण विकास की गति धीमी है जिसका प्रमुख कारण आधारभूत संसाधनों का पूर्णत: विकसित न हो पाना है। वर्तमान औद्योगीकरण के युग में ग्रामीण विकास में कृषि आधारित उद्योगों का अपना एक विशिष्ट स्थान है। इन उद्योगों में कम पूंजी की आवश्यकता होती है और इनका संचालन कुशलतापूर्वक किया जा सकता है। कृषि आधारित उद्योगों के साथ ग्रामीण विकास का प्रत्यक्ष संबंध है। देश में अधिकांश जनसंख्या गांवों में निवास कर कृषि पर पूर्णत: आश्रित है और गरीबी की रेखा के नीचे जीवन-यापन करने को बाध्य है। ऐसे में कृषि आधारित उद्योगों की स्थापना से अनेक समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। केन्द्र सरकार ने परम्परागत कृषि संरचना में परिवर्तन करने के उद्देश्य से कृषि आधारित उद्योगों की स्थापना पर विशेष बल दिया है। विश्व के अनेक विकसित देशों ने भी गहन कृषि, नवीन कृषि तकनीक और कृषि अनुसंधान प्रणाली अपनाकर कृषि आधारित उद्योगों की स्थापना की है। ग्रामीण विकास में कृषि उद्योगों की भूमिका को निम्न तथ्यों से परिलक्षित किया जा सकता है :

- कृषि आधारित उद्योगों की स्थापना से ग्रामीण आधारभूत सुविधाओं का विकास होता है।
- इन उद्योगों में स्थानीय लोगों को ही रोजगार में लगाये जाने से जहां एक ओर ग्रामीण पलायन पर रोक लगेगी, वहीं जनसंख्या की समस्या पर नियंत्रण किया जा सकेगा। इस प्रकार ग्रामीणों में रोजगार की संभावनाएं बढ़ेंगी।
- औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप सामाजिक और आर्थिक विकास होगा और ग्रामीणों के जीवन स्तर में सुधार होगा।
- ग्रामीण और शहरी अर्थ-व्यवस्था में व्याप्त असंतुलन में कमी आएगी।
- ग्रामीण क्षेत्रों में औद्योगीकरण से कृषि में सहायता मिलेगी तथा नई तकनीकों और उन्नत बीजों के संबंध में जानकारी प्राप्त होगी।
- कृषकों को रोजगार मिलने से मानवीय शक्ति का सही सदुपयोग हो सकेगा, जिससे राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी।

उपरोक्त तथ्यों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि वास्तव में कृषि आधारित उद्योगों पर समुचित ध्यान दिये बिना ग्रामीण विकास नहीं हो सकता। इस बात को ध्यान में रखते हुए वर्ष 1996-97 के बजट में इनके विकास का कार्यक्रम बनाया गया है तथा कृषकों एवं ग्रामीणों को आत्मनिर्भरता पर जोर दिया गया है।

*प्राध्यापक, वाणिज्य विभाग, दानियलसन महाविद्यालय, छिंदवाड़ा, (म.प्र.)

कृषि आधारित उद्योगों की संभावनाएं

यद्यपि कृषि उत्पाद विभिन्न उद्योगों के आधार हैं, कच्चे माल की प्राप्ति का प्रमुख स्रोत कृषि से ही संभव हो पाता है। इस दृष्टि से भारत में इन कृषि आधारित उद्योगों के विकास और विस्तार की संभावनाएं काफी अधिक हैं :

वनस्पति घी, तेल उद्योग: इस उद्योग में सूरजमुखी, मूंगफली, रैपसीड व तिलहन आदि का प्रयोग कर, वनस्पति घी या रिफाइन्ड खाद्य तेल प्राप्त किया जा सकता है जिसकी मांग देश के अलावा विश्वव्यापी है।

फ्रोजन फल और सब्जी उद्योग: इस उद्योग के माध्यम से फलों तथा अन्य खाद्य पदार्थों को अत्यन्त न्यून तापक्रम पर डिब्बों में सील कर दिया जाता है। यह उद्योग पाश्चात्य देशों में अत्यन्त लोकप्रिय है। आज भारत में इसका उपयोग शाकाहारी वस्तुओं के संरक्षण में हो रहा है।

चीनी, गुड़ और खाण्डसारी उद्योग: यह उद्योग उन क्षेत्रों में स्थापित किया जा सकता है जहां पर्याप्त मात्रा में गन्ना पैदा किया जाता हो। इसके अतिरिक्त चीनी उत्पादन में प्रयुक्त कच्चे माल के अवशेषों से बीयर का उत्पादन भी किया जा सकता है।

चावल, गेहूं, दलहन, तिलहन उद्योग: इसमें चावल का कोढ़ा जो निरर्थक होता है, उससे तेल निकालकर विभिन्न प्रकार के साबुनों का निर्माण किया जा सकता है। गेहूं, दलहन और तिलहन के अवशिष्ट पदार्थों से अनेक प्रकार के उत्पाद तैयार किये जा सकते हैं।

कृषि वानिकी उद्योग: कृषि भूमि पर नियमित फसलों के साथ पशुचारा, ईंधन, जैविक खाद, फल, औद्योगिक कच्चा माल आदि प्रदान करने वाले उपयुक्त वृक्षों का रोपण किया जा सकता है और उन वृक्षों से प्राप्त कच्चे माल को उद्योगों में प्रयुक्त कर विकेन्द्रित और स्वावलंबी समाज की स्थापना की जा सकती है।

इसके अतिरिक्त कपास, जूट, आम, बबूल आदि के अवशिष्ट पदार्थों से भी ग्रामीण कृषक अपनी आय में वृद्धि कर सकता है। ग्रामीण विकास की समृद्धि के लिए स्वरोजगार तथा ट्राइसेम कार्यक्रमों से रोजगार की संभावनाएं अवश्य हैं किंतु ग्रामीणों में कृषि उद्योगों का विकास ही बेरोजगारी दूर करने तथा सम्पन्नता लाने का प्रमुख स्रोत है क्योंकि इनके लिए कच्चा माल अर्थात कृषि उत्पाद यहीं पर उपलब्ध हैं। साथ ही इन उद्योगों के उत्पादों के निर्यात की बहुत संभावनाएं हैं। वर्तमान स्थिति के अनुसार निर्यात व्यापार में कृषि तथा उससे सम्बद्ध वस्तुओं का 70 प्रतिशत भाग है। इस प्रकार निर्यात की बढ़ती हुई मांग को पूरा करने में कृषि आधारित उद्योग महत्वपूर्ण योगदान कर सकते हैं। इन उद्योगों को लगाने से ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों की प्रत्यक्ष रोजगार की सम्भावनाओं में वृद्धि होगी और उद्योगों को कच्चे माल की आपूर्ति के लिए कृषि जिन्सों का उत्पादन बढ़ाना होगा। इससे कृषि संबंधित क्रियाओं में रोजगार के अधिक अवसर उपलब्ध हो सकेंगे। इस तरह कृषि आधारित उद्योग बहूद्देशीय सिद्ध हो सकते हैं। इन उद्योगों की सूची तालिका से स्पष्ट होती है:

तालिका

भारत में कृषि आधारित संभावित उद्योग

इकाई का नाम	कच्चा माल	पूंजी विनियोग (लाख रुपये)	रोजगार संख्या
बेकरी फ्लोर मिल	गेंहू	012.50	15
पोषण आहार	गेंहू, ज्वार, चना	040.00	25
सोया मिल्क	सोयाबीन	025.00	18
पशु आहार व मुर्गी दाना	अनाज व उसके छिल्ले	007.50	10
सोयाबीन आटा	सोयाबीन	025.00	20
चिप बोर्ड	कृषि अवशेष	125.00	55
दाल मिल	दलहनें	20.50	13
मशरूम उत्पादन	मशरूम स्पार्स	184.00	75
मक्का मिल	मक्का	005.00	07
विभिन्न मसालों से तेल	लहसुन, अदरक	012.00	09

स्रोत: ग्रामीण विकास न्यूज लेटर, ग्रामीण विकास मंत्रालय, मई 1996, नई दिल्ली, भारत

उपर्युक्त तालिका के अध्ययन से स्पष्ट संकेत मिलते हैं कि कृषि उत्पादों के माध्यम से विभिन्न प्रकार की लघु इकाइयां स्थापित की जा सकती हैं। इन उद्योगों में कम पूंजी विनियोजन के साथ ही अत्यधिक रोजगार के अवसर उपलब्ध हो सकते हैं।

खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों की संभावनाएं

कृषि आधारित उद्योगों से प्राप्त खाद्य कच्चे माल को तैयार माल में बदलने का कार्य खाद्य प्रसंस्करण उद्योग करते हैं। देश में प्राकृतिक खाद्य सामग्री बड़ी मात्रा में उपलब्ध है, जो कृत्रिम आहार सामग्री की तुलना में कहीं अधिक पौष्टिक एवं उपयोगी है लेकिन आज परिशोधित खाद्य सामग्री का सेवन व उपयोग आधुनिक फैशन बन गया है। उन उद्योगों की स्थापना से अनेक लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं। परिशोधित उत्पादन वृद्धि से देशी और विदेशी मांग की आपूर्ति की जा सकती है। इससे विदेशी मुद्रा प्राप्त होगी और अन्य राष्ट्रों से प्रतिस्पर्धा करने का अवसर मिलेगा। हमारे उद्योगों की शोधित क्षमता, गुणवत्ता, किस्म सुधार आदि का उचित ध्यान रख कर हम विश्व बाजार से जुड़ जाएंगे। इससे ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि आधारित उद्योगों को प्रोत्साहन मिलेगा, कृषकों की आय में वृद्धि संभव होगी।

खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों के संबंध में अन्ततः यह कहा जा सकता है कि बहुआयामी उपायों के फलस्वरूप अनेक विदेशी और अनिवासी भारतीय उद्योग-पतियों सहित बहुराष्ट्रीय कम्पनियां भी इस ओर आकर्षित हो रही हैं। विगत तीन वर्षों में लगभग तीन हजार प्रस्ताव रखे गये, जिन पर कुल मिलाकर लगभग 3.65 अरब रुपये की लागत आ रही है। यह एक अति उत्साहवर्धक तथ्य है।

उपरोक्त अध्ययन से निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि भारतीय ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था में विकासात्मक दृष्टि से कृषि आधारित उद्योग सर्वाधिक उपयोगी हैं। देश की बढ़ती हुई विशाल जनसंख्या के लिए रोजगार के अवसर बढ़ाने के लिये आवश्यक है कि इस प्रकार के उद्योग स्थापित किए जाएं। इस आशय से कृषि आधारित उद्योगों के विकास की अपार संभावनायें विद्यमान हैं। ❑

संदर्भ सूची

1. भारतीय अर्थ-व्यवस्था—डा. सुदामा सिंह, राधा प्रकाशन, नई दिल्ली, वर्ष-1996
2. ग्रामीण विकास पत्रिका, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली—जनवरी 1995
3. ग्रामीण विकास न्यूज लेटर, ग्रामीण विकास मंत्रालय, नई दिल्ली—मई 1996
4. उद्यम प्रेरणा, जिला उद्योग केन्द्र, छिंदवाड़ा, 1995

ग्रामीण उद्योगों में रोजगार

डा. नरसिंह बिन्नाणी

भारतीय अर्थ-व्यवस्था ग्राम प्रधान अर्थ-व्यवस्था है। देश की आर्थिक प्रगति में ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था का अपना विशिष्ट स्थान है। देश की जनसंख्या का लगभग 74 प्रतिशत भाग आज भी गांवों में निवास करता है। ग्रामवासियों के प्रमुख रोजगार के साधन कृषि और ग्रामीण उद्योग ही हैं। हमारे देश के गांवों में परंपरागत शिल्पों तथा ग्रामीण कारीगरी का ज्ञान और अनुभव बहुतायत में विद्यमान है। आज भी देश के गांवों में ऐसे-ऐसे कुशल हस्तशिल्पी और कारीगर हैं जिनके लघु व कुटीर उद्योगों द्वारा निर्मित वस्तुओं की मांग देश में ही नहीं अपितु विदेशों तक में है।

हमारे देश में लोहारगिरी, चर्मकार, बढ़ईगिरी, शिल्पकारी, दस्तकारी, रंगाई-छपाई, पशुधन उत्पादन, भेड़ और ऊन उत्पादन, वन-संपदा उत्पाद आदि से संबंधित अनेक ग्रामीण उद्योग प्राचीन काल से प्रचलित हैं। देश में खादी एवं ग्रामोद्योगों का विकास होने से अनेक नए एवं आधुनिक ग्रामीण व कुटीर उद्योगों को बढ़ावा मिला।

ग्रामीण क्षेत्रों में लुहारी उद्योग परंपरागत रूप से प्रचलन में है। इस कुटीर उद्योग में लोहार जाति के लोग अधिसंख्या में रोजगाररत हैं। इस उद्योग द्वारा ग्रामीण अंचलों में कृषि कार्यों के लिए उपयोगी विभिन्न औजारों और यंत्रों का निर्माण किया जाता है। इनमें कुदाली, गैंती, कसी, हल, चौंसगी, तगारी, बाल्टी आदि प्रमुख हैं। इससे ग्रामीण कृषकों को अपने लिए उपयोगी साधन गांव में ही उपलब्ध हो जाते हैं। अतः उन्हें शहरों की ओर भागना नहीं पड़ता तथा उनके समय और श्रम दोनों की बचत होती है।

इसी प्रकार ग्रामीण उद्योगों में चर्म उद्योग भी अत्यंत महत्वपूर्ण रोजगार का माध्यम है। इस ग्रामीण उद्योग में गांवों में जूतियां बनाने, चड़स बनाने आदि का कार्य चर्म शिल्पियों द्वारा पैतृक रोजगार के रूप में किया जाता है। वर्तमान में इस उद्योग द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में जूते, चप्पल, बैग आदि बनाने का कार्य भी किया जा रहा है।

इसके अतिरिक्त कुम्हारी उद्योग भी गांवों में फैला हुआ एक उल्लेखनीय रोजगार का माध्यम है। इस उद्योग द्वारा न केवल ग्रामीणों के लिए उपयोगी, अपितु शहरी आम जनता के उपयोग में लाई जाने वाली विभिन्न वस्तुओं का उत्पादन भी किया जा रहा है। कुम्हारी उद्योग में मटके, दीपक, सुराही, गमले, मिट्टी के खिलौने, हंडिया, सजावटी सामान आदि बनाए जाते हैं। इस उद्योग में कच्ची मिट्टी को माल अर्थात रा-मेटीरियल के रूप में उपयोग में लिया जाता है। पहले कच्ची मिट्टी को जमीन से खोदकर तैयार किया जाता है। इसके पश्चात चाक पर चढ़ा कर उससे सामान बनाया जाता है। यह सामान गांवों के साथ-साथ शहरों में भी भेजा जाता है। इसमें भी हजारों ग्रामीण रोजगाररत हैं।

भारत सरकार के वित्त मंत्रालय द्वारा जारी 'भारतीय आर्थिक समीक्षा 1996-97' के अनुसार देश में लघु और कुटीर उद्योग में वृद्धि की संभावनाएं बहुत हैं। इस समीक्षा के अनुसार वर्ष 1996-97 में देश में इनका उत्पादन 4,18,863 करोड़ रुपये होने का अनुमान लगाया गया था।

देश के ग्रामीण क्षेत्रों में इन रोजगारों के अलावा कुछ अन्य रोजगार के साधन उपलब्ध हैं। गांवों में चिनाई उद्योग यानी भवन निर्माण उद्योग में कार्य करने वाले कारीगर और राजमिस्त्री बड़ी संख्या में मौजूद हैं। ये लोग न केवल गांवों में चिनाई का कार्य करते हैं अपितु शहरों में बड़े-बड़े मकान, भवन, गोदाम, कारखानों आदि के निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। इसी प्रकार ग्रामीण हथकरघा उद्योग में भी रोजगार उपलब्ध है। इस उद्योग से जुड़े लोग गांवों में ही सूती, ऊनी तथा खादी के कंबल, दरी, गलीचा आदि बनाने का कार्य करते हैं। इसके अतिरिक्त देश के ग्रामीण क्षेत्रों में दस्तकारी का रोजगार भी बड़े पैमाने पर प्रचलन में है। संपूर्ण देश में विभिन्न प्रकार की दस्तकारी परंपरागत रूप से काफी लंबे समय से चली आ रही है। ग्रामीण क्षेत्रों में पीढ़ियों से चली आ रही इस विरासत ने अनेक ग्रामीण दस्तकारों को रोजगार दिया है।

विगत 6-7 वर्षों से देश में अपनाई जा रही उदार नीतियों के कारण ग्रामीण तथा कुटीर उद्योगों के सम्मुख अनेक समस्याएं उत्पन्न हो रही हैं। ग्रामीण हस्तशिल्प और कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देने के लिए इन्हें पर्याप्त वित्तीय सुविधाएं दी जानी चाहिए। इन उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुओं के विपणन की प्रभावी व्यवस्था की जानी चाहिए। इसके लिए पंचायत स्तर, गांव व कस्बा स्तर तथा जिला स्तर पर ग्रामीण उत्पादों से संबंधित प्रदर्शनी लगाई जानी चाहिए। इन सभी प्रयासों से देश में ग्रामीण हस्तशिल्प और कुटीर उद्योग क्षेत्र में रोजगार को बढ़ावा दिया जा सकेगा। ❑

लेखकों से

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, कविता, संस्मरण, लघुकथा आदि रचनाएं टाइप कराकर दो प्रतियों में भेजिए। रचनाओं के साथ मौलिकता का प्रमाणपत्र संलग्न होना चाहिए। जिन रचनाओं के साथ ऐसा प्रमाणपत्र संलग्न नहीं होगा, उन्हें स्वीकार नहीं किया जा सकेगा। अस्वीकृत रचना लौटाने के लिए कृपया डाक टिकट लगा और अपना पता लिखा लिफाफा लगाना न भूलें। सभी रचनाएं संपादक, 'कुरुक्षेत्र', ग्रामीण क्षेत्र और रोजगार मंत्रालय, कृषि भवन, नई दिल्ली-110001 के पते पर भेजें।

—सम्पादक

सुरक्षित भविष्य के लिए बच्चों के अधिकार

आजादी के बाद भारत में बाल कल्याण और विकास के नए युग की शुरुआत हुई। पिछले पांच दशकों के दौरान बच्चों के क्षेत्र में एक मौन क्रांति हुई है, जिसके अंतर्गत संधियां की गईं और नीति संबंधी दस्तावेजों की पुष्टि की गई। इन दस्तावेजों में बाल अधिकारों के बारे में संयुक्त राष्ट्र संधि काफी महत्वपूर्ण है।

बच्चों के लिए प्रथम आह्वान

2 सितंबर 1980 को अंतर्राष्ट्रीय कानून का रूप लेने वाली संधि की भारत सरकार ने 2 दिसंबर 1992 को पुष्टि की। इस संधि को, 'जेनेवा घोषणा' के रूप में जाना जाता है। 1959 में बाल अधिकारों के बारे में संयुक्त राष्ट्र ने एक प्रस्ताव पारित किया। यह संधि न तो एक दार्शनिक प्रतिमान है और न ही आकांक्षा संबंधी लक्ष्यों का वक्तव्य, जिसे दशाब्दियों में पूरा किया जाना है। यह तो शुद्ध रूप से देश के लगभग साढ़े 37 करोड़ बच्चों के अधिकारों और आकांक्षाओं को पूरा करने की हमारी वचनबद्धता है।

संधि में 54 अनुच्छेद हैं, जिन्हें ऐसे बुनियादी मूल्यों और आदर्शों के आधार पर तैयार किया गया है, जिसे मानव-परिवार के सदस्यों के स्वाभिमान और अहरणीय अधिकारों को दुनिया में आजादी, न्याय और शांति का आधार माना जाता है। संधि, इस दृष्टिकोण पर आधारित है कि देश अपने उत्तरदायित्वों को पूरा करने के लिए खुद कदम उठाए। इसके पीछे 'बच्चों के लिए प्रथम आह्वान' का सिद्धांत है, जिसके अनुसार बच्चों के लिए संसाधनों के निर्धारण को सर्वोच्च प्राथमिकता दी जानी चाहिए। संधि के अनुसार राज्यों की जिम्मेदारी है कि वे यह सुनिश्चित करें कि बच्चों को समाज में उनका उचित अधिकार मिले। इसमें परिवार के महत्व पर बल दिया गया है और ऐसा माहौल बनाने की बात कही गई है जिसमें बच्चों का स्वस्थ विकास हो सके। इसमें बच्चों के अधिकारों को बढ़ावा देने के लिए सभी व्यक्तियों और एजेंसियों द्वारा सतत प्रयास किए जाने की भी दलील दी गई है।

एक अर्थ में इस संधि का मतलब बच्चे को अधिकार देना तथा ऐसा माहौल बनाना है जिसमें सभी बच्चे सुरक्षित जीवन बिताते हुए अपनी पूरी क्षमता के साथ काम कर सकें।

बच्चों के अधिकारों को सुलभ कराना

संधि ने बच्चों की बुनियादी जरूरतों को नियामक अधिकारों के रूप में बदलने की सुविधा प्रदान की है। यह बच्चों के अस्तित्व, संरक्षण, विकास और सहभागिता से संबंधित बाल अधिकारों की ओर ध्यान आकृष्ट करती है। जीने के अधिकार में जीवन का अधिकार, स्वास्थ्य और पोषकों का उच्च मानक और रहन-सहन का समुचित स्तर शामिल है। इसमें जन्म से नाम का अधिकार, राष्ट्रीयता का अधिकार और जहां तक संभव हो अपनी पहचान बनाने और अपने अभिभावकों द्वारा देखभाल किए जाने का अधिकार शामिल है।

संरक्षण के अधिकार में न केवल सभी प्रकार के शोषण, अनुचित लाभ उठाए जाने, अमानवीय या अपमानजनक व्यवहार और उपेक्षा से बचाव शामिल है, बल्कि आपात परिस्थितियों और सशस्त्र संघर्ष के दौरान विशेष सुरक्षा का अधिकार भी शामिल है। विकास के अधिकार में शिक्षा के अधिकार, बाल विकास और देखभाल, सामाजिक सुरक्षा और विश्राम, मनोरंजन और सांस्कृतिक गतिविधियों के अधिकार भी शामिल हैं। सहभागिता के अधिकार में बच्चों के विचारों के प्रति आदर भाव, विचारों की आजादी, चेतना और धर्म के अधिकार शामिल हैं।

इस संधि की 30 सितंबर 1990 को बच्चों के बारे में हुए विश्व शिखर सम्मेलन में पुष्टि की गई। भारत भी बच्चों की उत्तरजीविता, सुरक्षा और विकास के बारे में घोषणा पत्र पर हस्ताक्षर करता रहा है। विश्व शिखर सम्मेलन में भारत ने जो वचन दिया था, उसका पालन करने के लिए मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अधीन महिला और बाल विकास विभाग ने बच्चों के लिए एक राष्ट्रीय कार्य योजना बनाई है। भारत की इस राष्ट्रीय कार्य योजना में विश्व शिखर सम्मेलन में पारित घोषणा पत्र की अधिकांश सिफारिशों को शामिल किया गया। योजना के लक्ष्य और उद्देश्य संधि के उद्देश्यों के अनुरूप हैं।

राष्ट्रीय कार्य योजना

राष्ट्रीय कार्य योजना ने अपने लक्ष्यों और उद्देश्यों के जरिए भारतीय संदर्भ में संधि में निहित बातों को साकार करने का एक आधार प्रदान

(शेष पृष्ठ 30 पर)

कुरुक्षेत्र 40 वर्ष पहले

ग्रामोद्योग की परिभाषा

आर. श्रीनिवासन

जैसा कि नाम से स्पष्ट है ग्रामोद्योग केवल वही उद्योग नहीं है जो गांवों में स्थापित किया जा सके बल्कि जो गांवों के जीवन और अर्थ-व्यवस्था में भी खप सके। गांव के लोगों का मुख्य धंधा खेती-बाड़ी होता है, इसलिए गांवों के लिए वही उद्योग उपयोगी सिद्ध हो सकता है जो खेती के विकास में मदद करे। इसका यह भी मतलब हुआ कि जो उद्योग खेती के विकास में मदद करेगा, वह उद्योग खेती की तरह ही गांव वालों के सामाजिक जीवन को सुदृढ़ बनाएगा और उनके जीवन की रोजमर्रा की जरूरतें पूरी करने में सहायक सिद्ध होगा। क्योंकि गांवों में लोग दूर-दूर बिखरे हुए रहते हैं, इसलिए यह जरूरी है कि वह उद्योग भी विकेन्द्रित ढंग से चलाया जाए। यदि ग्रामोद्योग में यह सब विशेषताएं होनी चाहिए तो इससे यह बात साफ है कि ऐसा कोई भी उद्योग तब तक ग्रामोद्योग नहीं कहलाएगा जब तक वह गांव वालों के सामाजिक जीवन के विभिन्न अंगों पर प्रभाव न डाले, फिर भले ही उसमें कितने अधिक लोगों को रोजगार मिल सके। ऐसे घरेलू या ग्रामोद्योग जो केवल रोजगार देने की दृष्टि से खोले जाएं लेकिन जिनका गांव वालों के दिन-प्रतिदिन के जीवन पर कोई प्रभाव न पड़ता हो, आवश्यक रूप से कुटीर या ग्रामोद्योग नहीं बन सकते। गांव वालों की रोजमर्रा की जरूरतें खाने, कपड़े, मकान और संस्कृति के बारे में है। इसलिए इसका यह मतलब हुआ कि यदि ग्रामोद्योगों के नाम को सार्थक करना हो तो वे ऐसे हों जिनका ग्रामीण जीवन के उपयुक्त अंगों में से किसी एक या अधिक से संबंध हो, जो विकेंद्रित ढंग से चलाए जा सकें और जो ग्रामीणों के सामाजिक जीवन को और अधिक सुदृढ़ बनाएं।

अखिल भारतीय खादी और ग्रामोद्योग बोर्ड ने संगठित होने के बाद जिन उद्योगों को अपने अधीन लिया, उनके बारे में विचार करते समय उल्लिखित बातों को अपने सामने रखा होगा। इस बोर्ड और इसके उत्तराधिकारी खादी और ग्रामोद्योग आयोग के अंतर्गत आजकल खादी और 12 दूसरे ग्रामोद्योग आते हैं। यह बिल्कुल स्पष्ट है कि ये ग्रामोद्योग गांव वालों की उल्लिखित चार जरूरी आवश्यकताओं में से किसी न किसी से सम्बद्ध हैं। आयोग निर्माण संबंधी अधिनियम में दी गई सूची अपने आपमें संपूर्ण नहीं है, बल्कि केवल उदाहरण के तौर पर है क्योंकि इसमें वे सब उद्योग शामिल नहीं हैं जो जीवन की प्रारंभिक और अनिवार्य जरूरतों के लिए जरूरी हैं। जहां खादी किसी व्यक्ति, परिवार या गांव को कपड़े के मामले में आत्म-निर्भर बनाने के लिए जरूरी है, वहां बाकी उद्योग गांव या कुछेक गांवों की इकाई के सामुदायिक जीवन की आवश्यकताएं पूरा करने के लिए अनिवार्य हैं। गांव वालों का सर्वांगीण विकास करने के लिए यह जरूरी होगा कि लोगों की रोजमर्रा की चार जरूरतें पूरी करने के लिए जिन दूसरे ग्रामोद्योगों की जरूरत है, उन पर यह आयोग समय-समय पर विचार करे और उन्हें अपने कार्यक्षेत्र के अंतर्गत ले।

निस्संदेह ये ग्रामोद्योग गांव वालों के जीवन के राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक पहलुओं पर प्रभाव डालते हैं। यद्यपि देश की वर्तमान स्थिति में राजनीतिक पहलू का विशेष महत्व नहीं है, परंतु सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक पहलुओं का महत्व बहुत बढ़ गया है। जीवन के चारों आवश्यक पहलुओं पर ये ग्रामोद्योग प्रभाव डालते हैं। और यह एक विचारणीय विषय है कि किस तरह इन ग्रामोद्योगों को चलाया जाए ताकि देश को अधिकतम लाभ पहुंचे। इन उद्योगों को किस तरह चलाया जाए, यह निर्भर करता है देश के संविधान में उल्लिखित सामाजिक और आर्थिक आदर्शों पर। इन उद्योगों के बारे में कार्यान्वित किए जाने वाले किसी भी दीर्घकालीन कार्यक्रम के लिए ये दो बुनियादी आदर्श सामने रखने पड़ेंगे।

ग्रामोद्योगों की समस्याएं सभी ग्रामोद्योगों के लिए प्राय: एक-सी हैं। इन सभी उद्योगों में बहुत-से कारीगर होते हैं जो सदियों से ग्रामीण जीवन के अभिन्न अंग बने हुए हैं। ये कारीगर अपना धंधा बहुत कुछ परंपरा के रूप में चला रहे हैं और कई तो बड़े उद्योगों के कमरतोड़ मुकाबले के बावजूद इन्हीं धंधों से चिपके हुए हैं और अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहे हैं। यही परंपरागत उद्योग आज भी युद्ध, अकाल और अन्य आपत्तियों के समय गांव वालों के रक्षक बने हुए हैं। इसलिए ग्रामोद्योगों की सबसे पहली और महत्वपूर्ण समस्या है कि किस तरह इन गरीब कारीगरों को मदद पहुंचा कर ग्रामोद्योगों को सहारा दिया जाए, पुनर्जीवित किया जाए तथा संगठित बनाया जाए।

कुरुक्षेत्र, मई 1958 अंक से उद्धृत

बावजूद बड़ी मुसीबतों के और असंगठित होने के जब ये कारीगर अपना अस्तित्व कायम रख सके हैं तो उससे यह सिद्ध होता है कि उनमें वह बुनियादी कौशल मौजूद है जो इन उद्योगों को निरंतर बनाए रख रहा है। तथापि जिस साज-सामान और औजारों का वे प्रयोग कर रहे हैं, या तो वे बहुत पुराने पड़ चुके हैं या बहुत अपर्याप्त हैं और इसी कारण उन्हें अपने धंधों में उचित आमदनी नहीं हो पाती। उन्हें अपनी आमदनी बढ़ाने के लिए उन्नत औजार देने होंगे और उनके बारे में प्रशिक्षण देना होगा। क्योंकि इन धंधों से इतना फायदा नहीं होता कि वे पूंजी जमा कर सकें, इसलिए पूंजी की व्यवस्था भी करनी होगी। इन ग्रामोद्योगों को सुदृढ़ बनाने के लिए और तैयार माल को बेचने के लिए, इन कारीगरों के संगठन भी बनाए जाने चाहिए। ये संगठन ऐसे होने चाहिए जो इन उद्योगों के सामाजिक और आर्थिक आदर्शों की पूर्ति में सहायक सिद्ध हों। आयोग ने विभिन्न कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने के लिए जो योजनाएं बनाई हैं, उनमें इन सब बातों का ध्यान रखा गया है।

इन उद्योगों को चलाने वाले ये कारीगर सदियों से उपेक्षित रहे हैं और आज समाज में इनका दर्जा बहुत नीचा है। जब ये बेचारे इन धंधों से अपना पेट भी नहीं भर सकते तो भला अपने को संगठित करने का विचार तक इनके मन में कहां से पैदा हो सकता है? इसलिए यह जरूरी है कि इनको संगठित करने के प्रयत्न बराबर जारी रखे जाएं। पहले इनके हितों की रक्षा करने के लिए इनके संगठन बनाने के कुछ प्रयत्न किए गए थे। इनमें से दो संगठन उल्लेखनीय हैं—अखिल भारतीय कत्तिन संघ और अखिल भारतीय ग्रामोद्योग संघ। ये दोनों संघ राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के परामर्श से बनाए गए थे और वह ही इनके अध्यक्ष थे। ये संघ (सोसाइटीज रजिस्ट्रेशन एक्ट) 1860 के अधिनियम 21 के अंतर्गत रजिस्टर्ड थे। बहुत-से निष्काम जन-सेवक इनके सदस्य थे। अपने उद्देश्यों की प्राप्ति में इन संघों को काफी कुछ सफलता प्राप्त हुई। स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले की परिस्थिति में इन संघों का ढांचा काफी कुछ उपयुक्त समझा गया था। पर अब स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद इन उद्योगों को देश की अर्थ-व्यवस्था में पहले से बड़ा भाग अदा करना है और बढ़ती हुई जनसंख्या का भी सदुपयोग करना है। इसलिए यह जरूरी है कि इन बदली हुई परिस्थितियों में उनका संगठनात्मक ढांचा भी बदला जाए। साथ ही इन उद्योगों को अपनी विशेषता भी सुरक्षित रखनी चाहिए और अपने सामाजिक तथा आर्थिक लक्ष्य भी सामने रखने चाहिए। इन सब चीजों का प्रभावकारी तरीका है—इनका सहकारी ढंग पर संगठन। सहकारिता से उत्पादन बढ़ाया जा सकता है, रोजगार की अधिक सुविधाएं पैदा की जा सकती हैं और धंधों का लाभ समान रूप से बांटा जा सकता है। इसमें व्यक्ति को विकास का भी पूरा मौका मिलता है और सामाजिक हित भी सुरक्षित रहते हैं। यह तो ठीक है कि देश के कुछ राज्यों में सहकारिता कोई नई चीज नहीं है पर यह भी ठीक है कि इसने वर्तमान परिस्थितियों के अनुरूप प्रगति नहीं की। सहकारी समितियां बनाने, उन्हें चलाने और उनका प्रबंध करने के लिए जनता को और विशेषतया गांव वालों को निरंतर शिक्षित करते रहना जरूरी है। गांव वालों को सहकारी तरीके अपनाने के प्रति प्रेरित करने के लिए सरकारी और गैर-सरकारी ढंग से प्रचार करना होगा और उसके लिए आवश्यक सुविधाएं प्रदान करनी होंगी। यह प्रसन्नता की बात है कि सामुदायिक विकास-कार्यक्रम में खेती, उद्योगों और दूसरी गतिविधियों के लिए सहकारी ढंग से काम करने पर विशेष जोर दिया जाता है। ❑

(पृष्ठ 28 का शेष)

सुरक्षित भविष्य के लिए बच्चों के अधिकार

किया है। योजना ने सन् 2000 तक बच्चों के लिए एक कार्यक्रम तैयार किया है। राष्ट्रीय कार्य योजना में स्वास्थ्य, पोषण, शिक्षा, पानी, सफाई और पर्यावरण को शामिल किया गया है और बालिका शिशु तथा कठिन परिस्थितियों में रहने वाले बच्चों पर विशेष ध्यान दिया गया है।

सरकार ने संधि की पुष्टि करके उसके अनुच्छेदों में की गई व्यवस्थाओं को स्वीकार कर लिया है। इससे सरकार के लिए अब आवश्यक हो गया है कि वह संधि में निहित अधिकारों को लागू करने के लिए समुचित कानूनी, प्रशासनिक और अन्य उपायों के लिए कदम उठाए। उसी के अनुसार सरकार, राष्ट्रीय तथा राज्य के कानूनों की समीक्षा कर रही है ताकि उन्हें संधि की व्यवस्थाओं के अनुरूप बनाया जाए।

संधि : एक महत्वपूर्ण दस्तावेज

बच्चों के अधिकारों के बारे में संधि एक महत्वपूर्ण और ऐसा पहला कानूनी दस्तावेज है जिसमें दुनिया भर के बच्चों को सब कुछ प्रदान करने की व्यवस्था है, जिसके वे अधिकारी हैं। इससे न केवल भारत के संविधान में निहित बच्चों के अधिकारों को गारंटी मिलती है, बल्कि उन लोगों के खिलाफ एक सशक्त हथियार मिलता है, जो इन अधिकारों से बच्चों को वंचित रखते हैं। सरकार के लिए यह संधि एक मानक है, जिसके जरिए वह उन उपायों की मात्रा और गुणवत्ता दोनों को ही माप सकती है, जिनका मान्य अधिकारों पर असर पड़ता है। यह संधि जबकि सरकार को इस बात के लिए जवाबदेह बनाती है कि वह व्यवस्थाओं को लागू करने को सुनिश्चित बनाए, साथ ही यह बच्चों से संबंधित सभी संगठनों को संधि के प्रस्तावों को लागू करने की जिम्मेदारी सौंपती है।

वास्तविकता यह है कि संधि के सभी अनुच्छेदों को लागू करने के लिए जरूरी नहीं है कि बच्चों को अधिकार देने के लिए न्यायपालिका या सरकारी तंत्र के हस्तक्षेप की आवश्यकता होगी। इनमें से अधिकांश सामाजिक और सांस्कृतिक प्रतिबद्धताएं हैं, जहां समुदाय और अभिभावक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इसलिए संधि और उसकी व्यवस्थाओं को लागू करने और उस पर निगरानी रखने के बारे में जागरूकता उत्पन्न करने की आवश्यकता है और बच्चों से संबंधित सभी लोगों द्वारा संयुक्त प्रयास करने की आवश्यकता है। ❑

साभार : पत्र सूचना कार्यालय

बायो गैस के प्रति बढ़ रहा उत्साह : विकास का प्रतीक

पी.आर. त्रिवेदी

देश में तेजी से बढ़ती आबादी ने अनेक संसाधनों सहित ऊर्जा का जबरदस्त संकट उत्पन्न किया है तथा ऊर्जा के संकट के चलते वनों का घनत्व तेजी से घटता जा रहा है। ऊर्जा संसाधन की हो रही दिनों-दिन कमी के विकल्प के रूप में 'बायो गैस' ग्रामीण क्षेत्रों में न केवल ऊर्जा की आवश्यकता की पूर्ति के लाभकारी संकेत दे रही है बल्कि पर्यावरण संरक्षण के क्षेत्र में भी प्रभावशाली भूमिका अदा कर रही है।

बायो गैस पशुओं के गोबर, मानव के मलमूत्र और शहरी जैविक कूड़े-करकट में स्थित कार्बनिक पदार्थों की 'उपचारण प्रक्रिया' के दौरान उत्पन्न होती है तथा यह अपारंपरिक ऊर्जा स्त्रोत से खाना पकाने, रोशनी, खाद एवं विद्युत उत्पादन में अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो रही है। बायो गैस में 60-70 प्रतिशत ज्वलनशील मीथेन गैस तथा कुछ मात्रा में कार्बन डाईआक्साइड, नाइट्रोजन एवं हाइड्रोजन सल्फाइड गैसें होती हैं। बायो गैस संयंत्र में वायु की अनुपस्थिति में कार्बनिक पदार्थों की उपचारण प्रक्रिया से उत्पन्न बायो गैस को एकत्रित कर रखा जाता है। संयंत्रण में मिश्रण टैंक, प्रवेशिका (इनलेट), उपचारक, गैस होल्डर, गैस निकास, स्लरी पिट आदि का सुव्यवस्थित प्रबंध होता है।

कार्बनिक पदार्थों को सर्वप्रथम पानी में उचित अनुपात में मिश्रण टैंक में डाल कर इन्हें उपचारण के योग्य बनाया जाता है। मिश्रण को प्रवेशिका के माध्यम से उपचारक में पहुंचाया जाता है। उपचारण में स्थित मिश्रण में हवा की अनुपस्थिति में और अत्यधिक नमी के कारण किणवन यानी जीवाणु-क्रिया से खमीर उठने लगता है। इसके फलस्वरूप प्रथम चरण में वाष्पिकृत अम्ल उत्पन्न होते हैं। दूसरे चरण में वाष्पिकृत अम्लों से बायो गैस उत्पन्न होती है। किणवन (फर्मेनटेशन) प्रक्रिया में प्रोटीन युक्त पदार्थ अमीन्स, नाइट्राइट्स और अमोनिया जैसी उच्च कोटि की जैविक खादों में परिवर्तित हो जाते हैं। उपचारण की प्रक्रिया से उत्पन्न बायो गैस को गैस होल्डर में एकत्रित कर निकास वाल्व और संलग्न पाइपों के जरिए विभिन्न उपयोग-स्थलों तक पहुंचाया जाता है। गैस पाइपों को बायो गैस की उपयोगिता के अनुसार गैस उपयोग (बर्नर), गैस लैंप, दोहरे ईंधन वाले ईंजन के साथ जोड़ा जाता है। बायो गैस निकालने के पश्चात शेष पाचित घोल जिसमें उच्च कोटि की खाद के सभी गुण होते हैं, उसे स्लरी पिट्स में सुखाया जाता है और फिर कृषि में उपयोग किया जाता है।

ग्रामीण परिवेश में आर्थिक और सामाजिक लाभ तथा पर्यावरण संरक्षण के दृष्टिकोण से इन संयंत्रों से उत्पन्न बायो गैस का मुख्य उपयोग सबसे उपयुक्त विकल्प के रूप में खाना पकाने और प्रकाश व्यवस्था के लिए किया जाता है। नई तकनीकी खोजों के परिणामस्वरूप इससे विद्युत भी उत्पन्न की जा सकती है जो कि 20 फीसदी डीजल एवं 80 फीसदी बायो गैस वाले दोहरे ईंधन इंजनों या आयातित इंजनों से संभव है। उत्पादित विद्युत से बल्ब, ट्यूब लाईट, पानी के पंप, चारा कटाई मशीन तथा धान पीसने की मशीन (चक्की) का संचालन किया जा सकता है। उपचारण प्रक्रिया के पश्चात संयंत्रों से निकली बहुमूल्य जैविक खाद रासायनिक खाद के मुकाबले अधिक लाभकारी होती है। ग्रामीण क्षेत्रों में बायो गैस संयंत्रों की स्थापना और रख-रखाव के लिए ग्रामीण युवाओं को रोजगार के नए अवसरों का सृजन भी किया है। बायो गैस का ग्रामीण क्षेत्रों में सर्वाधिक उपयोग होने पर पृथ्वी के पर्यावरण में 'मीथेन' की मात्रा में काफी कमी लाई जा सकती है, साथ ही ईंधन के अन्य स्त्रोतों को बचाया भी जा सकता है। बायो गैस संयंत्र शहरों में प्रतिदिन भारी मात्रा में उत्पन्न होने वाले कचरे से बायो गैस का उत्पादन, प्रदूषण से शहरों को मुक्त रखने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

सामान्यतया चार प्रकार के बायो गैस संयंत्रों का ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में आवश्यकतानुसार इस्तेमाल होता है। इनमें (1) पारिवारिक बायो गैस संयंत्र, (2) संस्थागत बायो गैस संयंत्र, (3) सामुदायिक बायो गैस संयंत्र तथा (4) मानव मल पर आधारित बायो गैस संयंत्र शामिल हैं। ग्रामीण परिवारों में एक से चार घनमीटर गैस प्रतिदिन उत्पादित करने वाला 'पारिवारिक बायो गैस संयंत्र' स्थापित किया जाता है जो कि पशु गोबर पर आधारित होता है जबकि 'संस्थागत एवं सामुदायिक बायो गैस संयंत्रों' का निर्माण विशेष संस्थाएं बड़े पैमाने पर बायो गैस के उपयोग के लिए करती हैं। ये संयंत्र गौशालाओं, होटलों, अस्पतालों, सब्जी मंडियों, चीनी मिलों द्वारा स्थापित करके उत्पन्न भारी जैविक कचरे का संयंत्रों के माध्यम से प्रतिदिन उपचारण कर बायो गैस का उपयोग किया जाता है।

संयंत्र की प्रकृति	प्रतिदिन गैस उत्पादन की संयंत्र की क्षमता (घनमीटर)	आवश्यक गोबर मात्रा (कि.ग्रा./दिन)	आवश्यक पशु संख्या	भोजन की आवश्यकता (प्रति सदस्य संख्या)
पारिवारिक	1	25	2-3	4 व्यक्ति
बायो-गैस संयंत्र	2	50	4-6	8 व्यक्ति
	3	75	7-9	12 व्यक्ति
	4	100	10-12	16 व्यक्ति
संस्थागत एवं	15	225	25-40	
सामुदायिक	25	625	60-70	
बायो-गैस संयंत्र	35	875	70-80	
	45	1150	100-120	
	60	1500	140-160	
	85	2250	200-225	

मानव मल पर आधारित बायो गैस संयंत्र भी बायो गैस उपयोग का महत्वपूर्ण साधन है लेकिन दुर्भाग्य से वर्तमान में हमारे देश में मात्र 4 प्रतिशत ग्रामीण एवं 35 प्रतिशत शहरी व्यक्ति ही मानव मलमूत्र के उचित उपचारण का लाभ उठाते हैं। गंदगी एवं हानिकारक बीमारियों के प्रसार को रोकने का यह जबरदस्त उपयोगी साधन है तथा सार्वजनिक शौचालयों के पास ही स्थापित किया जाता है। इससे खाना पकाने की गैस तथा उपजाऊ खाद प्राप्त होती है। इन संयंत्रों की स्थापना कच्ची बस्तियों, अस्पतालों, रेलवे स्टेशनों, बस अड्डों, बड़े धार्मिक स्थलों, होटलों, धर्मशालाओं पर स्थित सार्वजनिक शौचालयों के पास किया जा सकता है।

मानव मल पर आधारित संयंत्र

संयंत्र की प्रकृति क्षमता (घनमीटर)	शौचालय उपयोग करने वाले व्यक्ति प्रतिदिन (व्यक्ति/दिन)	शौचालयों की संख्या	नियमित जल आवश्यकता (लीटर/दिन)
8	250-300	5	600
15	450-550	10	1100
25	800-900	20	1600
45	1200-1300	30	2500
60	2100-2200	40	3500

आर्थिक लाभ के दृष्टिकोण से एक घनमीटर बायो गैस से 4-5 व्यक्तियों का खाना पकाया जा सकता है जो 0.48 किलोग्राम रसोई गैस के बराबर है। इसी प्रकार 25 घनमीटर प्रतिदिन क्षमता वाले संयंत्र से एक रसोई गैस एल.पी.जी. सिलेंडर के बराबर ज्वलन क्षमता की बायो गैस प्रतिदिन उत्पन्न की जा सकती है। दूसरी ओर एक घनमीटर बायो गैस से 1.25 किलोवाट विद्युत उत्पन्न की जा सकती है जिसकी 20.1 लीटर डीजल के बराबर ऊर्जा क्षमता होती है। वैज्ञानिक विश्लेषणों के अनुसार 60 घनमीटर क्षमता का बायो गैस संयंत्र 10 किलोवाट क्षमता के जनरेटर को 8 घंटे तक संचालित कर विद्युत उत्पादन कर सकता है। इसी प्रकार 2000 कि.ग्रा. गोबर व अन्य कार्बानिक पदार्थों से बायो गैस निर्माण के पश्चात लगभग 1300 कि.ग्रा. उच्च कोटि की बहुमूल्य जैविक खाद भी प्राप्त की जा सकती है।

अनुदान के दृष्टिकोण से गौरतलब है कि घरेलू बायो गैस संयंत्र की स्थापना के लिए भारत सरकार 1-10 घनमीटर क्षमता के संयंत्र के लिए अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, रेगिस्तानी जिले, लघु और सीमांत, भूमिहीन काश्तकारों को 2,500 रुपये एवं अन्यों को 2,000 रुपये की आर्थिक सहायता प्रदान करती है।

इन बायो गैस संयंत्रों की स्थापना से पूर्व आवश्यक दिशा-निर्देशों का पालन एवं पूर्ति आवश्यक है। संस्थागत बायो गैस संयंत्र स्थापित करने से पूर्व संयंत्र की क्षमता के अनुरूप प्रतिदिन गोबर की उपलब्धता, जल स्रोत उपलब्धता, संयंत्र निर्माण की अनुदान राशि के अतिरिक्त लागत वहन करने की क्षमता तथा संयंत्र संचालन एवं रख-रखाव की क्षमता सुनिश्चित करना अनिवार्य है। दूसरी ओर सामुदायिक संयंत्र की स्थापना से पूर्व संयंत्र के संचालन से लाभान्वित होने के इच्छुक ग्रामीणों में 4-5 जागरूक ग्रामीणों की एक समिति बनाना आवश्यक है। संयंत्र के सफल संचालन के लिए जरूरी है कि लाभान्वित सदस्य ग्रामीण प्रतिदिन अपने हिस्से का गोबर उपलब्ध कराएं ताकि उन्हें प्रतिदिन समय पर गैस उपलब्ध हो सके। संयंत्र द्वारा प्राप्त खाद का भी पुन: ग्रामीणों में समान वितरण हो।

अंत में यही कहा जा सकता है कि बायो गैस संयंत्र की स्थापना न केवल आर्थिक दृष्टिकोण से अत्यंत लाभकारी एवं उपयोगी है बल्कि पर्यावरण संरक्षण में भी इसकी अहम भूमिका है। इसके अलावा इससे कूड़े-करकट और गंदगी से फैलने वाली बीमारियों से निजात मिलती है। ग्रामीण क्षेत्रों में इसके प्रति बढ़ रहा उत्साह, ऊर्जा संकट को काफी हद तक कम कर सकता है।

संस्थागत एवं सामुदायिक तथा मानव मल आधारित बायो गैस संयंत्र स्थापना पर अनुदान एवं लागत

संयंत्र की प्रकृति	15-20 घनमीटर क्षमता	25 घनमीटर क्षमता	35 घनमीटर क्षमता	45 घनमीटर क्षमता	60 घनमीटर क्षमता	85 घनमीटर क्षमता
संस्थागत बायो गैस संयंत्र अनुदान	44,000 रु.	1.10 लाख रु.	1.10 लाख रु.	1.90 लाख रु.	2.30 लाख रु.	2.80 लाख रु.
एवं लागत	1.90 लाख रु.	2.66 लाख रु.	3.46 लाख रु.	3.81 लाख रु.	4.87 लाख रु.	6.90 लाख रु.
सामुदायिक बायो गैस संयंत्र अनुदान	44,000 रु.	1.40 लाख रु.	1.40 लाख रु.	3.00 लाख रु.	3.40 लाख रु.	4.0 लाख रु.
एवं लागत	1.90 लाख रु.	2.66 लाख रु.	3.46 लाख रु.	3.81 लाख रु.	4.87 लाख रु.	6.90 लाख रु.
मानव विष्ठा आधारित	40 हजार रु.	3.35 लाख रु.	9.20 लाख रु.	12.50 लाख रु.	16 लाख रु.	—

**बायो गैस संयंत्र अनुदान*

**इनकी लागत निर्माण स्थल की स्थिति तथा जरूरत के आधार पर तय होती है।*

ग्राम्य जीवन में मौसम की भविष्यवाणियां

सुधा

मानव और प्रकृति का रिश्ता अनादिकाल से एक-दूसरे से जूझने का रहा है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की अद्यनूतन प्रगति एवं सुविधाओं से पूर्व जलवायु, भू-गर्भ तथा वायु-ताप इत्यादि के परिवर्तनों का अनुमान, दीर्घ अनुभवों द्वारा स्थापित नैसर्गिक तथ्यों से किया जाता था। ग्रामीण जनजीवन में ज्ञान तथा आचरण की अधिकांश बातें, विभिन्न कथा-कहानियों, लोकाचारों, लोकगीतों और दोहों के माध्यम से पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित होती रही हैं। वैदिक काल से लेकर राजपूत काल तक का भारतीय इतिहास, यहां की वैज्ञानिक प्रगति और व्यावहारिक तथा उन्नत जीवन-शैली का पर्याय रहा है। गत वर्ष अमरीकी यान पाथ फाइंडर ने मंगल ग्रह की सतह पर जाकर पता लगाया कि मंगल की सतह लाल रंग की है जबकि यह जानकारी हमारे वेदों में कई हजार वर्ष पूर्व से वर्णित है।

आज भी ग्रामीण तथा कृषक समुदाय, मौसम की भविष्यवाणियां या पूर्वानुमान अपने आस-पास की वनस्पति, जीव-जंतु, हवा तथा बादलों की स्थिति को देख कर लगाता है। भौगोलिक तथा सामाजिक विभिन्नताओं वाले देश भारत में क्षेत्रीय मान्यताओं का व्यापक प्रभाव दिखाई पड़ता है। इस लेख में राजस्थान, हरियाणा, उत्तर प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों में प्रचलित मान्यताओं का वर्णन है। ये मान्यताएं ग्रामवासियों के दीर्घ अनुभवों पर आधारित हैं तथा प्राय: सही सिद्ध होने के कारण सदियों से जनजीवन में रची-बसी हैं।

महाकवि माघ की मान्यता थी कि यदि गधे कान लटका लें तथा टिटहरी जोर-जोर से चिल्लाते हुए अपने अंडों को सुरक्षित स्थान पर छिपाने का प्रयास तत्परता से करती दिखाई दे, तो निश्चय ही भयंकर बरसात होती है। दक्षिणी हरियाणा तथा उत्तर-पूर्वी राजस्थान के कुछ जिलों का संयुक्त नाम 'राठ क्षेत्र' है। राठ में ऐसा माना जाता है कि गधे मिट्टी में लौटने लगें तथा चिड़िया (गौरैया) भी बार-बार मिट्टी में नहाये, तो कुछ ही दिनों में बरसात की संभावना है।

राजस्थान के अधिकांश उत्तरी तथा पश्चिमी जिलों में मई तथा जून माह में भयंकर आंधियां आती हैं। इस संबंध में यह मान्यता है—

जेठ-महीना, सूरज तपावे,
सांझ ढले तक आंधी आवे।

अर्थात ज्येष्ठ माह में किसी दिन बहुत अधिक गर्मी पड़ रही हो तो शाम तक आंधी आ जाती है। वैज्ञानिकों ने इसे स्वीकारते हुए कहा कि सूर्य के अधिक ताप से वायु विरल होकर ऊपर उठ जाती है। अत: वायु दाब कम होने के कारण अन्य क्षेत्रों से हवा तेजी से कम दाब की ओर बढ़ती है तथा हल्की बालू रेत के कण आंधी के रूप में हमारे सामने आते हैं।

इसी प्रकार की लोक मान्यता सूर्य तथा चंद्रमा के चारों ओर गोलाकार में दिखाई देने वाले आभा मंडल के क्रम में है। यह आभा-मंडल कभी-कभी ही दिखाई देता है। ऐसा कहा जाता है—

सूरज कुंड और चांद जलेरी,
टूट्या टीबा भरगी डैरी।

इसका आशय है कि यदि सूर्य और चंद्रमा के चारों ओर कुंडनुमा चित्र बने, तो भारी बरसात के कारण टीले बह जाएंगे तथा तालाब इत्यादि भर जाएंगे। गत वर्ष अक्तूबर माह में राजस्थान में अप्रत्याशित रूप से 8 जिलों में भारी बरसात हुई थी, उस समय बड़ा-सा आभा-मंडल (जलेरी) चंद्रमा के चारों ओर कई दिन दिखाई दिया था। ऐसी ही मान्यता राजस्थान तथा गुजरात में है कि यदि चंद्रमा के चारों ओर का आभा-मंडल छोटा-सा हो, तो सूखा पड़ सकता है। वर्षा के संबंध में कई अन्य मान्यताएं भी हैं। जैसे—

आगम सूझे सांढणी, दौड़े थलां अपार,
पग पटकै बैठे नहीं, जद मेह आवणहार।

अर्थात यदि ऊंटनी इधर-उधर दौड़ती फिरे, पैर पटके तथा बैठती न हो, तो समझिए कि वर्षा होने वाली है। उत्तर प्रदेश में मान्यता है—

कीड़ी मुं अंड लै दर तज भूमि भमंत,
बरखा ऋतु बिसेस यौ जल, थल ठेल भरंत।

अर्थात जब घर में चींटियां अपने मुंह में अपने अंडे तथा खाद्य सामग्री लेकर इधर-उधर विशेषत: ऊंचाई की ओर चलती हैं, तो इसका तात्पर्य बहुत भयंकर बरसात होने वाली है। जून माह में तपती धरती को पानी की बहुत आवश्यकता होती है। ऐसे में वर्षा का अनुमान यूं लगाते हैं—

सूरज तेज सूं तेज, आड़ बौले अनयाकी,
मही माट गल जाए, पवन फिर बैठे छाली।
कीड़ी मैले ईंड, चिड़ी रेत न्हावै,
कासी कामन दौड़, आभौ लील रंग लावै।
डेडरौ उहक बाड़ां चढ़ै, विषहर चढ़ बैठे बड़ां,
पांडिया जोतिस झूठा पड़ै, घण बरसै इतरा गुणां।

राजस्थान की इस प्रचलित सूक्ति का तात्पर्य यह है कि यदि सूर्य का ताप तेज हो रहा हो, बत्तखें चिल्ला रही हों, बर्तन (मिट्टी) में रखा घी पिघल रहा हो, हवा की ओर पीठ करके बकरी बैठ रही हो, चींटियां अंडे लेकर चल रही हों, चिड़ियां रेत में नहा रही हों, कांसे के बर्तन का रंग फीका पड़ रहा हो, आकाश का रंग गहरा नीला हो रहा हो, मैंढ़े अपने बाड़े में घुस रहे हों तथा सांप वृक्षों पर चढ़ने लगे तो बहुत भारी बरसात होगी, फिर चाहे ज्योतिषियों ने अनावृष्टि की भविष्यवाणी ही क्यों न की हो।

गिरगिट रंग-बिरंगा हो, मक्खी चटकै देह,
मांकड़िया चहपह करै, जद आवत जौरे मेह।

अर्थात गिरगिट बार-बार रंग बदले, मक्खी, मनुष्य या जानवरों के शरीर से अधिक चिपके तथा मकड़ी बार-बार चकचक करे तो यह अधिक वर्षा का सूचक माना जाता है।

बिरछां चढ़ किरकांट बिराजैं,
स्याह सफेद लाल रंग साजै।
बिजनस पवन सुरियौ बाजे,
तो घड़ी पलक माहें मेह गाजै।

इस सूक्ति का आशय यह है कि यदि गिरगिट यानी किरकांट पेड़ पर ऊंचे चढ़े, सफेद और लाल रंग धारण करे तथा हवा का रुख उत्तर-पूर्व से हो, तो घड़ी भर में बरसात आने की संभावना है। इसी प्रकार की कुछ सूक्तियां वर्ष भर के बारे में भी हैं, जैसे—

अति काली भूमक्कड़ी, बांबी देख सुठंक,
बरस भलो बरसा घणी, हुवे किरात निसंक।

ऐसा माना जाता है कि यदि किसी वर्ष काले रंग की मकड़ियां अधिक हों, तो उस वर्ष बरसात अच्छी होती है। यदि मक्खी-मच्छर और डांस अधिक उत्पन्न हों, तो समय अच्छा बताया गया है जबकि विषैले कीट (बिच्छु, सांप) अधिक हों तो वह वर्ष अकालग्रस्त होता है। इसे यूं कहा गया है—

मक्खी, मच्छर, डांष हो, भाग जमानौ जांण,
उपजे जहरी जानवर, काल तथा सहिनाण।

पूर्वी राजस्थान तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश में यह मान्यता प्रचलित है कि जिस वर्ष अधिक वर्षा होती है, उस वर्ष बुखार तथा कम वर्षा हो, तब खाज-खुजली के रोग ज्यादा होते हैं। पिछले दस वर्षों में यह धारणा पूर्णतया सही सिद्ध हुई है। इसी तरह यह भी कहा गया जाता है कि जब चिड़िया पानी में फुदकती हो, तब बरसात की ऋतु का अंत समझना चाहिए। हरियाणा, राजस्थान के ग्रामीण अंचलों में जमीन के अंदर के पानी पता लगाने के लिए कुंआ खोदने से पूर्व, संबंधित खेत में बकरियों को लाकर छोड़ा जाता है। ऐसा कहा जाता है कि भूमि के अंदर जिस स्थान पर जलधारा होती है या कोई पुराना कुंआ दबा हुआ हो, वहां बकरियां नहीं बैठतीं। मोर, पपीहे, मेंढक की चिल्लाहट, पूर्वी दिशा के बादल तथा उमस भरे दिन के पश्चात बरसात की संभावना भारत के सभी क्षेत्रों में स्वीकारी जाती है। यद्यपि जीव-जंतुओं द्वारा प्रदर्शित व्यवहार प्राय: सही भविष्यवाणी करता है, तथापि प्रकृति तथा पर्यावरण में आ चुके परिवर्तनों का प्रभाव जीव-जंतुओं पर भी पड़ने लगा है। उदाहरण के लिए, गत वर्ष अक्तूबर माह में हुई अप्रत्याशित वर्षा के कारण जोधपुर में पंखधारी दीमक प्रकट हो गई थी, जबकि इनका समय प्रतिवर्ष जुलाई माह ही होता है। जीव-जंतुओं के लक्षणों के आधार पर मौसम की भविष्यवाणी करना भारत में नहीं, बल्कि दुनिया के सभी देशों में समान रूप से लोकप्रिय है।

जापान में वर्ष भर में अनेक बार भूकंप आता है। अत: जब भी वहां कबूतर, कुत्ता, बिल्ली, तोता तथा मुर्गी विचलित व्यवहार करने लगती हैं, तो जापानवासी भूकंप के प्रति सचेत हो जाते हैं। भारत के ग्रामीण अंचलों में पाए जाने वाले झींगुर की आवाज गर्मी में तेज तथा सर्दियों में धीमी रहती है। ग्रामीण झींगुर की चकचक से ही तापमान का पता लगा लेते हैं। इस विषय पर सन् 1897 में प्रसिद्ध वैज्ञानिक डोलबीयर ने प्रयोग करके 'डोलबीयर सिद्धांत' प्रतिपादित किया था, जिसके अनुसार 15 सैकेंड में झींगुर जितनी बार आवाज करे, उस संख्या में 40 जोड़ कर फैरेनहाइट डिग्री में तापमान प्राप्त हो जाएगा।

आज आवश्यकता इस बात की है कि हम अपनी परंपरागत मान्यताओं में विश्वास करते हुए परिवर्तित परिस्थितियों में इनकी उपादेयता का सही, निष्पक्ष तथा व्यावहारिक अध्ययन करें क्योंकि अनुभव का कोई विकल्प नहीं होता है। ❑

पाठकों के विचार

इस पत्रिका में *पाठकों के विचार* स्तंभ में पाठकगण ग्रामीण विकास के विभिन्न पहलुओं पर अथवा इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों पर अपने विचार भेज सकते हैं। ये विचार दो सौ शब्दों से अधिक के न हों और सम्पादक, कुरुक्षेत्र, कृषि भवन, नई दिल्ली-110001 के पते पर भेजे जाएं।

इसके लिए कोई पारिश्रमिक देय नहीं होगा परंतु उन पाठकों की पत्रिका की एक प्रति भेजी जाएगी जिनके विचार इस स्तंभ में प्रकाशित होंगे।

—सम्पादक

प्रौढ़ शिक्षा से संभव है महिला साक्षरता

पंकज कौशिक

किसी भी समाज की उन्नति तथा प्रगति के लिए पुरुषों के समान ही स्त्रियों का सहयोग अति आवश्यक है तथापि स्त्रियों में चेतना पैदा करने के लिए तथा घर और समाज में अपने उत्तरदायित्व को निभाने के लिए उनका शिक्षित (साक्षर) होना बहुत जरूरी है। प्रत्येक स्त्री का एक महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व है माता के कर्तव्य को भली-भांति निभाना। एक सुशिक्षित माता ही बालक का भली-भांति लालन-पालन करने, उसमें सुप्रवृत्तियों का विकास करने और उसके व्यक्तित्व का निर्माण करने में सहायक हो सकती है, क्योंकि माता ही बालक की सबसे पहली आचार्य होती है। वह बालक के संस्कारों को निर्धारित करती है और समुचित वातावरण, सीख और स्नेह देकर उसका सामाजिक तथा मानवीय विकास करती है। एक गृहस्थ जीवन में स्त्री माता, गृहणी तथा पत्नी-तीन रूपों में कर्तव्य का पालन करती है। यदि वह सुशिक्षित है तो वह पारिवारिक जीवन को अधिक सुखी तथा आकर्षक बनाने के लिए उपर्युक्त उत्तरदायित्व को अच्छी तरह पूरा कर सकती है। वर्तमान अर्थ संकट के समय, जबकि अधिकांश परिवारों की आय बहुत कम है, इन परिवारों की स्त्रियां शिक्षा का उपयोग परिवार की आय को बढ़ाने में भी कर सकती हैं। यह सब तभी संभव है जबकि स्त्री को अपने विकास के अवसर मिलें जो कि शिक्षा द्वारा ही प्रदान किए जा सकते हैं। किंतु जब हम अपने देश की साक्षरता, विशेष रूप से स्त्रियों की साक्षरता, पर दृष्टि डालते हैं जो 1991 में की गई जनगणना के अनुसार यह केवल 52.11 प्रतिशत ही है, तो हमें काफी निराशा और क्षोभ होता है। परिणामस्वरूप स्त्रियों में शिक्षा का कम प्रसार होने के कारण वे अपने उत्तरदायित्वों को निभाने में असमर्थ दिखाई देती हैं जिसका उनके स्वयं के विकास पर बहुत प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। अधिकांश परिवारों की स्त्रियां शिक्षा के अभाव में अपना जीवन अनेक प्रकार की उलझनों में व्यतीत करती हैं। ऐसी स्थिति में परिवार तथा समाज के विकास में उनका योगदान कहां तक प्राप्त करने की आशा की जा सकती है?

हमारा इतिहास साक्षी है कि प्राचीन काल में स्त्रियों ने न सिर्फ घर के अंदर अपने उत्तरदायित्वों को निभाया है, वरन घर के बाहर जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में भाग लेकर समाज तथा राष्ट्र के विकास की गति में यथासंभव योगदान दिया है। साथ ही कार्य तथा व्यवहार के आदर्श उपस्थित कर दूसरे लोगों को प्रेरणा प्रदान की है। प्रश्न उठता है कि यह सब क्योंकर संभव हुआ। यह सब शिक्षा का करिश्मा था, जिसने स्त्रियों को उनके विकास में सहायता प्रदान की।

किंतु आज स्थिति बहुत भिन्न है। आजादी के बाद से हमने शिक्षा के प्रसार की गति को तीव्र किया है, किंतु बढ़ती आबादी तथा कई अन्य आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक कारणों से शिक्षा के लाभ को हम जन-सामान्य तक अपेक्षित प्रतिशत में नहीं पहुंचा सके हैं। इसी का परिणाम है कि हमारे बीच इस समय प्रौढ़ों की एक बहुत बड़ी संख्या मौजूद है जो कि निरक्षर तथा अशिक्षित हैं। इसमें स्त्रियों की संख्या पुरुषों की संख्या से लगभग दोगुनी है। निरक्षर तथा अशिक्षित स्त्रियों की संख्या में इतनी वृद्धि का कारण सामाजिक ही रहे हैं और इसी वजह से आज हमें इसकी बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ रही है। यही कारण है कि आज हम सभी ने तथा हमारी सरकार ने पुरुषों के साथ स्त्रियों की शिक्षा के महत्व को समझा है और 2 अक्तूबर 1978 से प्रौढ़ साक्षरता तथा प्रौढ़ शिक्षा के संबंध में राष्ट्रीय स्तर पर सक्रिय रूप से प्रयत्न प्रारंभ कर दिया है। हमारी सरकार ने यह भी अनुभव किया है कि राष्ट्र की समृद्धि, खुशहाली तथा सुरक्षा का दायित्व निसंदेह देश की जनता पर है और जनता तभी इन क्षेत्रों में सहायक सिद्ध हो सकती है जबकि उसे अच्छी शिक्षा मिले। इस कार्य में हमें सभी लोगों के सहयोग की आवश्यकता है। यदि हम किसी एक वर्ग की उपेक्षा करके विकास करना चाहें तो यह नितांत असंभव है। सकारात्मक सामाजिक क्रांति और सामाजिक परिवर्तन में हमारी प्रौढ़ किंतु शिक्षित स्त्रियां सहायक बन सकती हैं, ऐसा हम सभी समझते हैं। अत: हमें प्रौढ़ शिक्षा के आंदोलन को समाज की प्रौढ़ स्त्रियों को शिक्षित करने की दिशा में तीव्र करने की आवश्यकता है।

प्रौढ़ स्त्रियों को शिक्षित करने का कार्य एक दुष्कर कार्य है जिसे बहुत सूझ-बूझ तथा सावधानी से करने की जरूरत है। इस कार्य की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि स्त्रियों को शिक्षित करने का कार्य सामाजिक सुधार में रुचि रखने वाली निस्वार्थ तथा कर्तव्यनिष्ठ महिलाएं ही अपने हाथों में लें। ऐसा इसलिए आवश्यक है क्योंकि हमने देखा है कि जिन

प्रांतों में स्त्री कार्यकर्ताओं ने समाज-शिक्षा का कार्य अपने हाथों में लिया है, उनके प्रयत्नों के परिणाम बहुत उत्साहजनक मिले हैं। यदि एक बार स्त्रियों में साक्षरता और शिक्षा का प्रचार-प्रसार हो जाए, तो भावी पीढ़ी की शिक्षा की समस्या बहुत सरल हो जाएगी क्योंकि एक लड़के को शिक्षा देने का अर्थ है—सिर्फ एक ही लड़के को शिक्षा देना, किंतु एक लड़की को शिक्षा देने का मतलब है कि संपूर्ण परिवार को शिक्षा देना।

स्त्रियों में प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए आवश्यक है कि इन स्त्रियों के लिए प्रौढ़ शिक्षा केंद्र में कोई उचित समय होना चाहिए। सुविधा की दृष्टि से स्त्रियों के लिए समाज-शिक्षा की कक्षाएं यदि दोपहर के बाद लगाई जाएं तो परिणाम अनुकूल हो सकते हैं, क्योंकि सुबह और शाम के समय स्त्रियां घरेलू कार्यों में व्यस्त रहती हैं। प्रौढ़ स्त्रियों में शिक्षा-प्रसार की सफलता और प्रभावोत्पादकता के लिए यह आवश्यक है कि यह शिक्षा उनकी दृष्टि से व्यावहारिक हो। अधिकांश प्रौढ़ स्त्रियां अपने परिवार की आवश्यकताओं को पूरा करने में व्यस्त रहती हैं। उनके लिए आय-व्यय का संतुलन बनाए रखना निरंतर चिंता का विषय रहता है। इसलिए यदि प्रौढ़ शिक्षा, महिलाओं को अपनी ओर आकृष्ट करना चाहती है तो यह आवश्यक है कि उन्हें आर्थिक लाभ की आशा बंधाई जाए। विभिन्न कुटीर उद्योगों और दस्तकारियों में प्रशिक्षण देने की व्यवस्था करने से न केवल स्त्रियां समाज-शिक्षा की ओर आकर्षित होंगी, बल्कि उससे उन्हें अपने परिवार की आय-व्यय को सुधारने में भी सहायता मिलेगी। कोई भी स्त्री ऐसी शिक्षा पसंद करेगी जो उसे अपने तथा अपने बच्चों के कपड़े तैयार करना, सिलाई-कढ़ाई करना सिखाए, उसे भोजन तथा अन्य विभिन्न प्रकार की वस्तुओं को तैयार करना सिखाए जिन्हें उसे बाजार से खरीदना पड़ता है। इस प्रकार की सहायता यदि महिलाओं को मिल जाए तो वे अपनी जीविका का उपार्जन स्वयं कर सकती हैं और इस तरह अपने जीवन को सुखमय बना सकती हैं। प्रौढ़ महिलाओं के विकास का एक अन्य कारण यह है कि वे वर्तमान सामाजिक-व्यवस्था के अंतर्गत अपने कर्तव्यों तथा अधिकारों को समझें। महिलाओं के लिए अच्छी नागरिकता की शिक्षा का कम महत्व नहीं है। देश की वर्तमान लोकतांत्रिक प्रणाली में हर व्यक्ति को अपने मत के प्रयोग का समान अधिकार प्रदान किया गया है, किंतु हम देखते हैं कि अशिक्षा के कारण प्रौढ़ महिलाएं अपने अधिकारों का सही उपयोग नहीं कर पातीं। अतः यह आवश्यक है कि प्रौढ़ स्त्रियों को लोकतांत्रिक व्यवस्था तथा नागरिक अधिकारों से परिचित कराया जाए। यह इसलिए भी आवश्यक है कि इन क्षेत्रों में शिक्षित महिला ही अपने बच्चों को नागरिकता का पाठ पढ़ा सकती है। इस प्रकार ऐसी शिक्षा से महिला तथा बच्चों, दोनों का विकास हो सकेगा।

वयस्क महिलाओं में प्रौढ़ शिक्षा का प्रसार होने से भेद-भाव कम हो जाएगा। हम सभी यह जानते हैं कि जात-पांत जैसे भेदों से देश की एकता को खतरा है। यदि एक बार स्त्रियों में जात-पांत की भावना समाप्त हो जाए, फिर सारे देश से इसे समाप्त होने में देर नहीं लगेगी। इन सभी परिस्थितियों के मद्देनजर महिला साक्षरता पर विचार-गोष्ठियों का आयोजन किया जा रहा है। ❑

साहित्य और पत्रकारिता पर पढ़िए

प्रकाशन विभाग

द्वारा प्रकाशित

ज्ञानवर्द्धक एवं विचारोत्तेजक पुस्तकें

पुस्तक	लेखक	मूल्य
अज्ञेय अपने बारे में	संपा: मधुकर लेले (लाइब्रेरी)	55.00
	(पेपर बैक)	40.00
अक्षरों की अंतर्ध्वनि	अमृता प्रीतम	15.00
शमशेर बहादुर सिंह	संकलन	70.00
हिंदी और उसकी उपभाषाएं	डॉ. विमलेश कांति वर्मा	200.00
हिंदी : विकास और संभावनाएं	डॉ. कैलाश चंद्र भाटिया	100.00
प्रेमचंद की विचार यात्रा	कमर रईस	30.00
आदिकवि महर्षि वाल्मीकि	सुखबीर सिंह	11.00
अमीर खुसरो	सोहन पाल सुमनाक्षर	15.00
आकाशवाणी	राम बिहारी विश्वकर्मा	16.00
भारत में जनसंवाद	महावीर सिंह	50.00
भारतीय विज्ञापन में नैतिकता	मधु अग्रवाल	45.00
दूरदर्शन : दशा और दिशा	सुधीश पचौरी	
भाग– I		60.00
भाग–II		25.00
हिंदी के यशस्वी पत्रकार	क्षेम चंद्र सुमन	30.00
जनसंपर्क	मदन गोपाल	15.00
पत्र, पत्रकार और पत्रकारिता	राजेंद्र शंकर भट्ट	30.00

इन स्थानों पर उपलब्ध हैं :

विक्रय केंद्र : प्रकाशन विभाग

पटियाला हाउस, तिलक मार्ग, **नई दिल्ली**; सुपर बाजार, कनॉट सर्कस, **नई दिल्ली**; हाल नं. 196, पुराना सचिवालय, **दिल्ली**; राजाजी भवन, बेसेंट नगर, **चेन्नई**; 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, **कलकत्ता**; बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, **पटना**; प्रेस रोड, **तिरुअनंतपुरम**; 27/6, राममोहन राय मार्ग, **लखनऊ**; कॉमर्स हाउस, करीमभाई रोड, बालॉर्ड पायर, **मुंबई**; राज्य पुरातत्वीय संग्रहालय बिल्डिंग, पब्लिक गार्डंस, **हैदराबाद**; पहली मंजिल, एफ विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला, **बंगलौर**

बिक्री काउंटर : पत्र सूचना कार्यालय

सी. जी. ओ. कॉम्पलैक्स, ए विंग, ए. बी. रोड, **इंदौर**; 80, मालवीय नगर, **भोपाल**; के–21, नंद निकेतन, मालवीय मार्ग, सी स्कीम, **जयपुर**

ट्राईसेम : एक मूल्यांकन

बी.बी. मंसूरी

ग्रामीण बेरोजगारी हमारे देश में एक विषम समस्या बनी हुई है। इससे छुटकारा पाने के लिए भारत सरकार द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में स्वरोजगार संवर्द्धन हेतु अनेक कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। ग्रामीण युवा स्वरोजगार प्रशिक्षण कार्यक्रम (ट्राईसेम) इन्हीं कार्यक्रमों में से एक है। यह कार्यक्रम समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम का एक अंग है जिसका सूत्रपात एक केंद्र प्रायोजित योजना के रूप में 15 अगस्त 1979 को किया गया था।

लक्ष्य

कार्यक्रम का उद्देश्य 18 से 35 वर्ष की आयु-वर्ग के उन ग्रामीण युवाओं को तकनीकी तथा उद्यमशीलता की कुशलताएं प्रदान करना है जो गरीबी की रेखा से नीचे जीवन-यापन करने वाले परिवारों से हैं ताकि वे प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद स्वरोजगार प्रारंभ कर सकें। इस कार्यक्रम के अंतर्गत प्रशिक्षण प्राप्त करने वाला प्रत्येक व्यक्ति, समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम का संभावित लाभार्थी होता है। प्रशिक्षित किए जाने वाले युवाओं में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के युवाओं की संख्या कम-से-कम 50 प्रतिशत और महिलाओं की संख्या कम-से-कम 40 प्रतिशत होनी चाहिए। ट्राईसेम प्रशिक्षण के बाद स्वरोजगार या नौकरी करने में समर्थ शारीरिक रूप से विकलांगों के लिए कम से कम तीन प्रतिशत स्थान आरक्षित हैं। देहाती क्षेत्रों में स्थित अनाथालयों के निवासियों, विधवाओं, मुक्त हुए बंधुआ मजदूरों, सजा से छूटे अपराधियों, बड़ी विकास परियोजनाओं के कारण विस्थापित व्यक्तियों और कुष्ट रोग से ठीक हुए व्यक्तियों को न्यूनतम आयु-सीमा में छूट प्रदान की जाती है।

प्रशिक्षण की अवधि तथा वित्तीय सहायता

इस कार्यक्रम में प्रशिक्षण औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थानों, कृषि विज्ञान केंद्रों, नेहरू युवक केंद्रों, खादी ग्रामोद्योग बोर्डों, राज्य ग्रामीण विकास संस्थानों, विस्तार केंद्रों एवं स्वयंसेवी एजेंसियों द्वारा संचालित संस्थानों में उस्ताद कारीगरों द्वारा अपने काम के स्थानों पर दिया जाता है। यह प्रशिक्षण आवश्यकता पर आधारित होता है। प्रशिक्षण की अवधि घटाई-बढ़ाई जा सकती है। छह माह तक के पाठ्यक्रमों के बारे में जिला स्तर पर और इससे अधिक अवधि के पाठ्यक्रमों के बारे में राज्य स्तर पर निर्णय लिया जाता है। प्रशिक्षण के अवधि में प्रशिक्षणार्थियों को छात्रवृत्ति और उपयुक्त औजार किट मुफ्त दी जाती है। उन्हें कच्चे माल की खरीद के लिए वित्तीय सहायता भी प्रदान की जाती है। प्रशिक्षण के ढांचे को विस्तृत करने के लिए प्रशिक्षण संस्थानों को आर्थिक सहायता और इनके उस्ताद कारीगरों को मानदेय भी दिया जाता है।

मूल्यांकन

इस कार्यक्रम के अंतर्गत छठी योजना में 10.15 लाख युवाओं को प्रशिक्षण दिया गया, वहीं सातवीं योजना में 9.98 लाख तथा आठवीं योजना के प्रथम चार वर्षों में 11.29 लाख युवाओं को प्रशिक्षण दिया गया। वर्ष 1997-98 के दौरान इस कार्यक्रम पर 59 करोड़ रुपये व्यय करने का प्रावधान किया गया है।

निष्कर्ष के तौर पर यह कहा जा सकता है कि ट्राईसेम ग्रामीण बेरोजगारी दूर करने में अपनी अहम भूमिका निभा रहा है तथा सरकार को इस कार्यक्रम के माध्यम से बेरोजगारी और गरीबी दूर करने में आशातीत सफलता मिल रही है। ❑

प्रेरक कथा

गुरु की महिमा

के.डी. गंगराडे

आज से लगभग 2300 वर्ष पूर्व यूनान में एक दिन गुरु अरस्तु और उनका चेला सिकन्दर एक नाव में समुद्र की सैर कर रहे थे। अकस्मात समुद्र में तूफान आ गया और नाव उलटने लगी। गुरु और चेला दोनों समुद्र में डूबने लगे। उस समय झट से नाविक बादशाह सिकन्दर को बचाने के लिए दौड़ा तो सिकन्दर ने उससे कहा—"ओ मल्लाह! मुझे बचाने से पहले गुरु अरस्तु को ही बचाओ। क्योंकि मैं अरस्तु जैसा कोई और इन्सान नहीं बना सकता, मगर गुरु अरस्तु मुझ जैसे लाखों सिकन्दर बना सकता है।" प्रभु कृपा से नाव उलटने से बच गई। अरस्तु और सिकन्दर दोनों बच गए।

वास्तव में गुरु का पद महान है, जिसकी महिमा का वर्णन करना असंभव है। ❑

कैसे खत्म हो बेटी-बेटे का फर्क

अंकुश्री

हमारे समाज में समाज की महत्वपूर्ण इकाई और 'आधी दुनिया' से संज्ञीभूत नारी को वह समानता नहीं मिल पाई है, जिसकी वह हकदार है। इसका कारण है—समाज का पुरुष-प्रधान होना। हालांकि यह व्यवस्था पुरुषों की ही देन है—ऐसा हरगिज नहीं कहा जा सकता। मगर यह बात तय है कि कुंवारी और विधवा महिलाओं की स्थिति बड़ी कष्टकर है। माता को छोड़कर बाकी विधवाओं को अपशकुनी मानने की मानसिकता को तोड़ना आसान नहीं है। यहां सवाल यह नहीं है कि विधवा के प्रति लोगों की मानसिकता कैसी होनी चाहिए बल्कि सवाल यह है कि विधवाओं के प्रति वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में लोगों की मानसिकता क्या है?

हमारे देश की कुछ आदिम जातियां आज भी स्त्री-प्रधान हैं। वहां बेटी को समाज में सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। लेकिन हमारे समाज के अधिकतर वर्गों में पुरुषों की प्रधानता है। इसका स्पष्ट कुप्रभाव महिलाओं के जीवन पर पड़ता है। ऐसी ही परिस्थिति में बेटी की शादी को एक महत्वपूर्ण घटना के बदले महान दुर्घटना कहने तक की नौबत आ जाती है। ऐसे कुछ घरों में बेटी के जन्म को बोझ मान लिया जाना उनकी मजबूरी होती है।

बेटी को बोझ मानने का प्रमुख कारण दहेज है। बेटी जब विवाह-योग्य होने लगती है, तभी से वह माता-पिता या परिवार में बोझ-सी प्रतीत होती है। लेकिन मां के पेट में बेटी भी उसी तरह पलती है, जिस तरह बेटा। जन्म भी दोनों का समान ढंग से होता है। लेकिन जब पता चल जाता है कि नवजात शिशु बेटी है तो उसी क्षण न केवल पारिवारिक सदस्यों के बीच बल्कि वहां उपस्थित अन्य लोगों के मुंह से भी निकल जाता है, 'बेटी हुई है?' लेकिन बात को संभालने के लिए कहने वाले, लगे हाथ सांत्वना भी दे देते हैं, 'खैर, कोई बात नहीं। सबका अपना भाग्य है।'

जन्म से ही बेटी और बेटे के फर्क का कारण है—बेटी के विवाह में आने वाली समस्याएं। बेटी के जवान होते ही माता का उसकी शादी के लिए वर खोजने का तकाजा शुरू हो जाता है। बेटी का बाप या भाई योग्य वर की तलाश में दर-दर भटकते फिरते हैं। बेटी वाला समाज में ऐसी नीची दृष्टि से देखा जाता है जैसे उसने कोई महान अपराध किया हो।

अधिकतर वरों की योग्यता मात्र इतनी होती है कि वे किसी के बेटे होते हैं। योग्य वर का तात्पर्य कोई हरफन मौला या बहुत योग्य व्यक्ति नहीं होता। बेटी वाले की बात जिस लड़के से पट जाए, वही योग्य वर हो जाता है। आये दिन वरों की विभागवार दरें प्रकाशित होती रहती हैं। लेकिन उन दरों पर भी वर आसानी से नहीं मिल पाते।

इससे यह पता चलता है कि बेटी बोझ क्यों है? दहेज की समस्या का समाधान आसान नहीं होता। कोई धन जोड़े भी, तो कितना और कहां से? वर्तमान महंगाई में पेट पालना ही जिसे दूभर है, उसके लिए बचत तो मात्र एक छलावा है। सरकारी कर्मचारियों की अपने विभागीय नियमों के तहत वेतन से कुछ कटौती हो जाती है मगर गैर-सरकारी कर्मचारियों या अनियोजित कर्मचारियों को तो अपने आप बचत करनी पड़ती है, जो आसान नहीं है। बहुत थोड़े-से लोग ही ऐसे हैं, जो अपनी कमाई से कुछ बचा पाते हैं। मगर वह इतना नहीं होता कि उससे दहेज रूपी दैत्य से निपटा जा सके।

बेटी-बेटे के फर्क को कम करने में विज्ञान का कोई कारगर उपयोग नहीं हो पाया है, जबकि गर्भस्थ शिशु का लिंग परीक्षण कराने की वैज्ञानिक सुविधा का दुरुपयोग मादा भ्रूण की हत्या के लिए खूब किया जा रहा है। भ्रूण-हत्या आज एक आम बात हो गई है। इसे कानूनी संबल भी प्राप्त हो चुका है। ब्रिटेन में तो 28 सप्ताह के गर्भ का भी पतन कानून-सम्मत है तभी तो वहां 1987 में करीब 1,72,000 गर्भों को समाप्त कराया गया। हमारे देश में अभी सिर्फ महाराष्ट्र में गर्भ परीक्षण पर रोक लग पाई है। इसे रोकने के लिए कोई राष्ट्रीय कानून नहीं बन पाया है, जिसके तहत पूरे देश में इस जघन्य कार्रवाई पर रोक लगाई जा सके।

इस शताब्दी के आरंभ में हमारे देश में पुरुषों और स्त्रियों की जनसंख्या का अनुपात 100:97 था, जो नौ दशक बाद अभी 100:93 हो गया है। स्त्रियों की संख्या कम रहने के बावजूद स्वयं स्त्रियां स्त्री-भ्रूण की हत्या में लगी हुई हैं।

दरअसल गर्भ-परीक्षण की शुरुआत गर्भस्थ शिशु के स्वास्थ्य की जांच के लिए की गई थी। इससे गर्भस्थ शिशु की विकलांगता आदि की जानकारी मिल जाती है ताकि उपाय या गर्भपात कराया जा सके। मगर इस जांच सुविधा का दुरुपयोग कर स्वयं समाज ही विकलांग होता जा रहा है क्योंकि गर्भपात हमेशा आसान नहीं होता। गर्भपात के चलते संपूर्ण विश्व में वर्ष भर में करीब साठ लाख महिलाएं रोगग्रस्त होकर कष्टमय जीवन जीने के लिए बाध्य हैं, तो करीब एक हजार गर्भवती महिलाएं प्रतिदिन काल के गाल में समा जाती हैं।

भ्रूण-हत्या के लिए गर्भ-परीक्षण की पद्धति भले ही आज नई वैज्ञानिक उपलब्धि बन गई है लेकिन यह सामाजिक अभिशाप बहुत पुराना है। जन्म

(शेष पृष्ठ 40 पर)

खतरनाक है मानसिक तनाव

अभयकुमार जैन

मानसिक तनाव विश्वव्यापी समस्या है। वास्तव में आज की दौड़ती-भागती जिंदगी में मानसिक तनाव जीवन का एक हिस्सा बन गया है। संत्रास, कुंठा, भग्नाशा, ऊब आदि तनाव के ही विभिन्न नाम हैं।

आशा-निराशा, जय-पराजय, सफलता-असफलता और सुख-दुख जीवन में छूप-छांव की भांति आते हैं। यदि हम अनुकूल समय में प्रसन्न रहें और प्रतिकूल समय में तनाव में रहें तो यह उचित नहीं है। हमें हर हाल में तानवमुक्त रहने का प्रयास करना चाहिए।

तनाव के अनेक कारण हैं। शोरगुल वाले काम की जगह किसी के लिए तनाव का कारण बनती है, तो किसी के लिए निकम्मा अंफसर ही तनाव का कारण बन जाता है। कभी कोई खास काम-काज न मिल पाना तनाव पैदा करता है, तो कभी कुछ लोग किसी जगह ट्रैफिक जाम के कारण ही तनावग्रस्त हो जाते हैं। इस प्रकार तनाव के कई कारण हैं जिनका घातक प्रभाव हमारे स्वास्थ्य पर पड़ता है।

हर उम्र के अपने-अपने तनाव हैं। बच्चों और युवकों के तनाव, वृद्धों के तनाव से भिन्न होते हैं। बच्चों के तनाव के कारण मां-बाप से प्यार न मिलना, विशेष रूप से माता का प्यार न मिलना, बच्चों को अनावश्यक रूप से डांटना, बच्चों को उनकी मनपसंद वस्तुएं न दिलाना, बच्चों के साथ भेद-भाव आदि हो सकते हैं।

युवा वर्ग के अपने तनाव हैं। अधिकांश युवकों के तनाव का मुख्य कारण आर्थिक होता है जो स्वयं परिवार से प्रारंभ होता है। मध्यम तथा निम्न-वर्गीय परिवारों में आर्थिक अभावजनित कलह, असंतोष और अशांति से युवक नहीं बच पाते। इसके अतिरिक्त सम्पन्न तथा समृद्ध परिवारों के युवक भी तनाव से मुक्त नहीं हैं, क्योंकि युवाओं के आहार की अनियमितताएं, मादक द्रव्यों का सेवन, गलत सोहबत आदि के प्रभाव से तनाव में निरंतर बढ़ोतरी होती है। इसके अतिरिक्त यौन-संबंधी तथा विवाह-संबंधी कुंठाएं भी तनाव को जन्म देती हैं। योग्यतानुसार रोजगार न मिलना भी युवा वर्ग के तनाव का एक मुख्य कारण है।

वृद्धों के तनाव में संतान के द्वारा उनका ठीक प्रकार से पालन न करना, रिटायर्ड होने के पश्चात आर्थिक समस्याएं पैदा होना, शारीरिक अक्षमता, संतान का गलत रास्ते पर भटक जाना आदि शामिल हैं।

इनके अलावा आज के औद्योगिक जगत तथा आधुनिक युग में कदम-कदम पर तनाव-ग्रस्त लोग मिलते हैं। मनुष्य का स्वभाव है कि वह सुख-शांति तथा सम्पन्नता चाहता है। लेकिन आधुनिक युग में ये चीजें ऐसी नहीं हैं कि उन्हें आसानी से प्राप्त किया जा सके। आज व्यक्ति के सामने कई प्रकार की समस्याएं हैं। व्यक्तिगत, राजनैतिक, सामाजिक-आर्थिक उतार-चढ़ाव, बेरोजगारी, पारिवारिक वातावरण का अभाव आदि ऐसे कारण हैं जो मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन को लगातार अमानवीय बना रहे हैं। यहां तक कि प्यार और स्नेह जैसी मानवीय भावनाएं भी दिखावटी बन गई हैं।

अत्यधिक तनाव की पहचान है—चेहरे पर पीलापन, पसीना निकलना, दिल की धड़कन तेज होना और थकान। इनकी अनदेखी करना खतरनाक और घातक है। इसके नतीजे गंभीर ही नहीं, जानलेवा तक हो सकते हैं। कुछ लोग अत्यधिक तनाव से अल्सर के रोगी या विभ्रम के शिकार हो जाते हैं। यह भी हो सकता है कि तनाव किसी के लिए दिल का दौरा पड़ने का कारण बन जाए।

अत्यधिक कार्य तथा समय का दबाव भी तनाव पैदा करता है। घर में प्रेम न मिलना, कार्यालय में सहयोगी कर्मचारियों द्वारा सहयोग न मिलना तथा सामाजिक समर्थन नहीं मिलना भी तनाव का कारण बन सकता है। हमारी जरूरतों और क्षमताओं में असंतुलन भी तनाव पैदा कर सकता है।

प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक तथा केलीफोर्निया यूनिवर्सिटी के प्रो. जेम्स सी. रोलमैन ने एक बार लिखा था, "सत्रहवीं शताब्दी को पुनर्जागरण काल कहा जाता है, अठारहवीं शताब्दी को बौद्धिक काल, उन्नीसवीं शताब्दी को प्रगतिकाल और बीसवीं शताब्दी को चिंताओं का काल कहा जाता है।"

तनाव मुक्त रहने के उपाय

परिवार जीवन की प्रथम पाठशाला है। व्यक्ति का पारिवारिक जीवन बहुत शांत होना चाहिए। यदि व्यक्ति का पारिवारिक जीवन अशांत तथा कलहयुक्त है तो परिवार का मुखिया और अन्य सभी तनावग्रस्त रहेंगे। अत: परिवार के हर सदस्य का यह दायित्व है कि वह प्रेम, शांति तथा सामंजस्य से रहे।

बच्चों को अनावश्यक रूप से डांटना नहीं चाहिए। उन्हें किसी भी गलती पर मारना-पीटना बिल्कुल नहीं चाहिए। उन्हें बहुत प्रेमपूर्वक कार्य करने के तौर-तरीके बताने चाहिए। घर में किसी एक सदस्य को अत्यधिक महत्व देना और दूसरे सदस्यों की उपेक्षा भी अन्य सदस्यों के तनाव का कारण बन जाती है।

परिवार के सदस्यों का यह दायित्व है कि वे बच्चों में प्रारंभ से ही अच्छे संस्कार विकसित करें ताकि वे गलत संगत में न पड़ें, अन्यथा बच्चों के बिगड़ जाने पर पारिवारिक तनाव उत्पन्न हो जाता है।

परिवार के सदस्यों का यह दायित्व है कि वे धूम्रपान, मदिरापान और अन्य नशीली दवाओं का सेवन न करें, अन्यथा बच्चों में इनकी आदत का विकास हो जाता है जो पारिवारिक शांति तथा स्वास्थ्य के लिए अहितकर रहता है।

जब आप किसी चीज से चिंतित तथा परेशान हैं, तो उसे दबाइए मत। अपनी परेशानी उस समझदार तथा अनुभवी व्यक्ति को बताइए जो आपके विश्वास योग्य हो और आपको सही दिशा तथा सलाह दे सके।

जब आपके पास कई कार्य एक साथ आ जाएं, तो उन्हें देखकर आप परेशान तथा चिंतित न हों। ऐसा न समझें कि काम का बहुत बोझ है। कार्यों को आप प्राथमिकता के आधार पर करते जाएं और एक कार्य समाप्त करने के पश्चात ही नया कार्य हाथ में लें।

प्रात: काल जल्दी उठना चाहिए ताकि आपको कहीं जाना हो, मसलन कार्यालय आठ बजे पहुंचना है तो आप दैनिक कार्यों से निवृत्त होकर निश्चित समय पर वहां पहुंच जाएं, अन्यथा विलंब होने पर व्यर्थ की भागम-भाग रहेगी।

आप दिन भर कार्यालय में मानसिक श्रम करते हैं, इससे तनाव होता है। अत: शाम को घर आने के पश्चात यदि किचन गार्डन हो तो उसमें कुछ देर कार्य करें या फिर कुछ देर संगीत सुनें अथवा पत्रिकाएं पढ़ें।

कार्य करते समय बीच में थोड़ा पड़ोसी से गपशप कीजिए और थोड़ा टहलिए भी। इससे काम की अधिकता का तनाव निश्चित रूप से कम होगा।

जीवन में अभाव होने से भी मानसिक तनाव उत्पन्न हो जाता है। आप उस अभाव को दूर करने का अपने स्तर पर प्रयत्न करें। जब आप ज्यादा अभावग्रस्त हों, तो उस समय उन व्यक्तियों के बारे में सोचना शुरू कर दें जिनके पास आपसे भी कम सुविधाएं तथा साधन हैं। यह विचार आते ही आप स्वयं को अधिक बेहतर तथा मानसिक राहत महसूस करेंगे।

जब आप सफर कर रहे हों, तो साथ में पत्र-पत्रिकाएं या पाकेट ट्रांजिस्टर रखें ताकि इंतजार के क्षणों का भरपूर उपयोग किया जा सके अन्यथा उन क्षणों में आपका दिमाग उस व्यवस्था को दोष देता रहेगा जिसके कारण आपको असुविधा हो रही है।

दूसरों की सहायता करें। चिंता केवल अपना ध्यान रखने वाले पर सवारी करती है। जब आप हर समय दूसरों की भलाई का ध्यान रखेंगे, तब आपको चिंता करके अपने कष्टों को बड़ा समझने का समय ही नहीं मिलेगा।

जीवन में आशावादी दृष्टिकोण रखें। कठिनाइयों और बाधाओं का खिलाड़ी की तरह सामना करें। जीवन को खेल समझें और जीत-हार की चिंता न करते हुए खेलें।

ऐसा होता तो अच्छा होता, यह सोचना छोड़िए। सदैव अच्छे की आशा रखिए। निराशाएं और असफलताएं आपके लिए सीढ़ी बनकर आई थीं जिन पर चढ़कर आप सफलता और सुख के प्रांगण में प्रवेश करेंगे।

आशा है, ये तौर-तरीके आपको मानसिक तनाव से राहत दिलाएंगे। ❑

(पृष्ठ 38 का शेष)

कैसे खत्म हो बेटी-बेटे का फर्क

से ही बेटी-बेटे में अंतर मानने वाले समाज में बेटी को जन्मते, मार देने का रिवाज बड़ा प्राचीन है। मां द्वारा अपने दूध के साथ अफीम पिला कर नवजात शिशु को मार देने का तरीका प्रचलित रहा है, गला दबा कर भी कुछ माताएं अपनी नवजात बेटियों को दुनिया से विदा कर देती थीं। ऐसी बात नहीं है कि समाज का रूप बदल जाने से ये परंपराएं मिट गई हैं। अब भी नवजात लड़की को मार देने की बात आए दिन सुनाई देती है। विशेषकर कुछ जातियों में नवजात पुत्री को मार देने की कुत्सित परंपरा रही है। जैसलमेर जिले में प्रतिवर्ष करीब 300 नवजात पुत्रियों की हत्या करने का समाचार प्रचारित हो चुका है। भाटी जाति की इस परंपरा का परिणाम है कि सौ वर्षों से उनके गांव में न तो कोई बारात आई है और न ही विवाह में बजने वाली शहनाई की मधुर आवाज ही गांव वाले सुन पाए हैं।

वस्तुत: बेटी-बेटे में फर्क की शुरुआत स्वयं मां करती है। परिवार के अन्य सदस्य मां के बाद ही इस फर्क पर जोर दे पाते हैं। आखिर इसका कारण क्या है? स्त्री-पुरुषों में समानता की मांग करने वाले सामाजिक कार्यकर्ताओं के पास असमानता के इस प्रश्न का क्या कोई उत्तर है?

बेटी को बोझ समझना या बेटी की तुलना में बेटे को अधिक महत्व देना, सिर्फ हमारे देश तक ही सीमित नहीं है। दूसरे कई देशों में भी बेटी को बोझ माना जाता है और बेटे के जन्म पर खुशियां मनाई जाती हैं।

जिन दंपत्तियों को अपनी संतान नहीं हो पाती या होकर मर जाती है, वे दूसरे की संतान गोद लेते हैं। देखा जाता है कि बेटी को कम, बेटे को ही अधिक गोद लिया जाता है। ऐसा सिर्फ पति की इच्छा से नहीं होता, क्योंकि पति-पत्नी दोनों मिल कर संतान गोद लेते हैं।

हमें मालूम है कि सृष्टि का क्रम तभी तक चल पाएगा, जब तक नर और मादा का भेद बना हुआ है। लेकिन इसके बावजूद सृष्टि की एक अति महत्वपूर्ण इकाई और 'आधी दुनिया' से संज्ञीभूत नारी या बेटी की उपेक्षा को आमतौर पर कम नहीं किया जा सका है। परिवार में उपेक्षित भले नहीं हो मगर समाज में उसकी उपेक्षा अवश्य होती है क्योंकि वह बेटी है और उसकी शादी में उल-जलूल दहेज देना पड़ता है। ऐसी स्थिति में वर्तमान सामाजिक और वैवाहिक व्यवस्था में बदलाव आए बिना बेटी-बेटे के फर्क की मानसिकता नहीं बदल सकती। ❑

(आवरण पृष्ठ 2 का शेष)

स्वर्ग से भी सुंदर गांव

अत: इस धोखे से बचने के लिए
शहर छोड़ने का संकल्प लिया
और शहर को अंतिम प्रणाम किया
चूंकि गांव की शांति में जो सुख है
वह शहर जाने के बाद ही जाना
गांव की असलियत को पहचाना।

गांव के खेत-खलिहानों में
जो सुख का खजाना है
उसे मेरे भाई
मैंने शहर जाने के बाद ही जाना है
भले ही गांव में गरीबी है
लाचारी है, भुखमरी है
मगर इनसे घबराकर भी
जो लोग यहां दु:ख उठाते हैं
वे इनमें आत्मीयता पाते हैं।

वैसे इन दिनों गांव में भी
प्रदूषण फैला जरूर है
पैसों की ताकत जिनके पास है
इसका उन्हें गरूर है
इसलिए शहर की सभ्यता का असर
गांव पर भी पड़ा है
जिससे गांव दो राहों पर खड़ा है।

इसलिए गांव को
शहरी सभ्यता होने से बचाओ
और ये संकल्प दोहराओ
कि गांव को गांव रहने देंगे
शहरी सभ्यता का असर
उस पर नहीं पड़ने देंगे।

मगर यह तभी संभव होगा
जब गांव वाला इस बात को समझेगा
असलियत को पहचानेगा
हर अनपढ़ आदमी भी पढ़ेगा
कुरुतियों और अंधविश्वास से लड़ेगा
दारू पीना छोड़ेगा
भाईचारा और आपस में
प्यार-मोहब्बत से रहेगा
और उन सारी बुराइयों को छोड़ेगा
जो गांव के लिए कुठाराघात है।

इसलिए भाई मेरे
इस संकल्प के साथ
गांव वापस आया हूं
साथ में गांव वालों के लिए
यह संदेश लाया हूं
कि गांव में जो आ गई कुरुतियां
उसे जड़-मूल से मिटाऊंगा
उन सारे प्रदूषणों से
छुटकारा दिलवाऊंगा
जो पर्यावरण को बिगाड़ रहे हैं
गांव की छवि को उजाड़ रहे हैं।

अत: तुम भी आओ
मेरे साथ जुट जाओ
और हम सब गांववासी मिलकर
जिस दिन गांव के
पर्यावरण को सुधारेंगे,
उस दिन गांव को
स्वर्ग से भी सुन्दर पाएंगे।

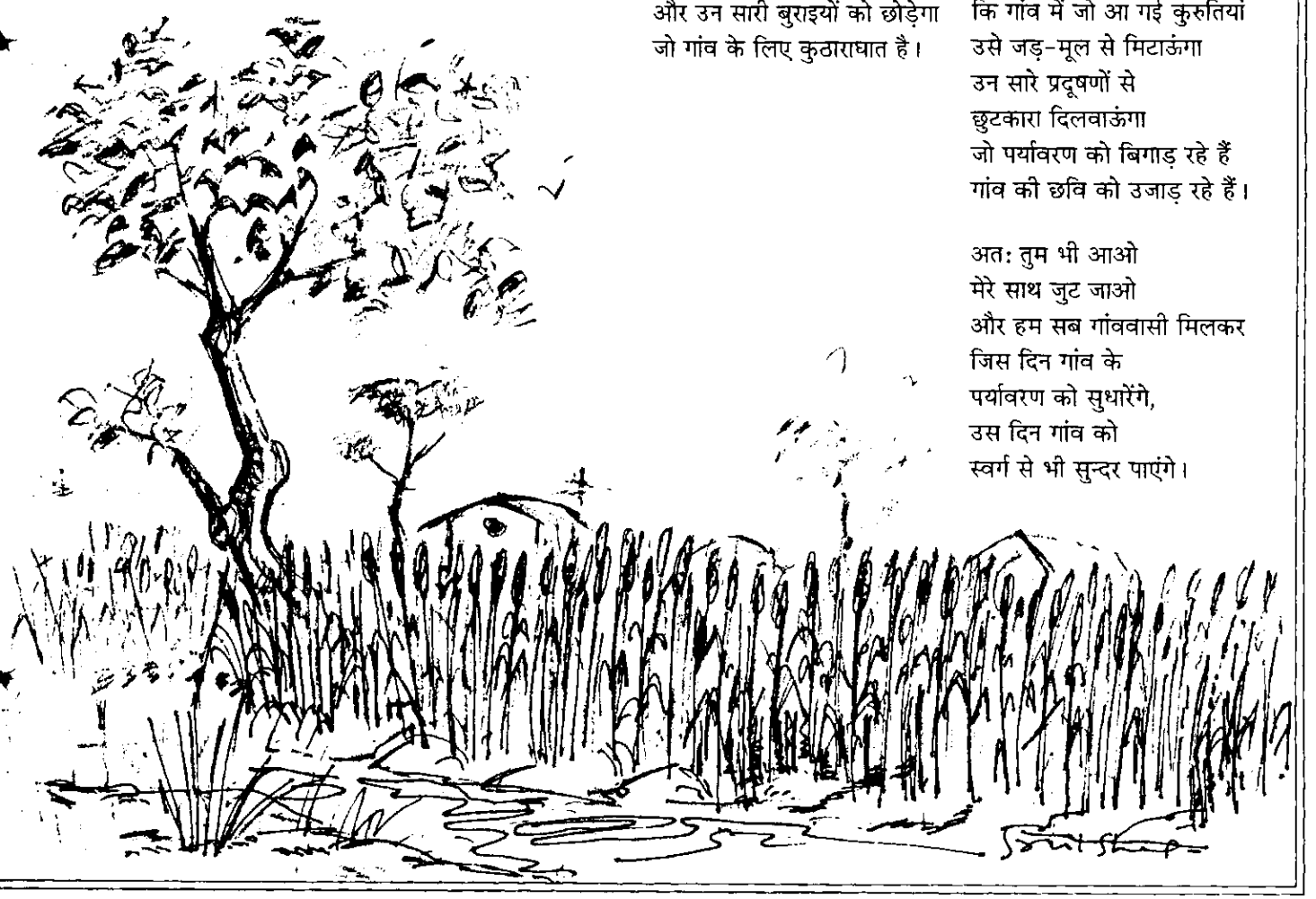

ई.एस.एस.एन. 0971-8451
भुगतान के बिना डी.पी.एस.ओ. दिल्ली में डाक में डालने
अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)-55

P&T Regd. No. D (DL) 12057/98
ISSN 0971-8451
Licenced under U (DN)-55
to post without pre-payment at DPSO, Delhi-54

श्रीमती सुरिन्द्र कौर, निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित और मुद्रित। मुद्रक तारा आर्ट प्रेस, बी-4 हंस भवन
नई दिल्ली-110002. प्रकाशन स्थान : 655, 'ए' विंग, निर्माण भवन, नई दिल्ली-110001. सम्पादक : बलदेव सिंह मदान